ग्वालियर के सांस्कृतिक विकास में जैन धर्म

— रवीन्द्र मालव

भारत के हृदय-स्थल पर स्थित देश के इस भाग का इतिहास अत्याधिक प्राचीन है। यद्यपि विभिन्न इतिहासकारों ने समय-समय पर प्रकाशित अपने ऐतिहासिक लेखों एवं पुस्तकों में इस क्षेत्र की प्राचीनता के सम्बन्ध में लिखा है तथापि यहाँ के इतिहास के सम्बन्ध में पर्याप्त शोध न होने के कारण अनेकों ऐतिहासिक तथ्य प्रकाश में नहीं आ पाये हैं। इसी कारण अनेकों स्थानों पर इसके अभाव में इतिहासकारों एवं लेखकों को कल्पनाशक्ति का सहारा लेने को विवश होना पड़ा है।

यों तो सारे भारत में ही इतिहास विषय पर पर्याप्त शोध-कार्य नहीं हुआ है और न ही विशेष लिखा ही गया है, परन्तु ग्वालियर के सम्बन्ध में यह बात विशेष रूप से कही जा सकती है। यही कारण है कि यहाँ के प्राचीन इतिहास का अधिकांश भाग अन्धकारमय है। सच पूछा जाये तो इसका प्रमुख कारण हमारी संस्कृति ही रही। प्रारम्भ में इस देश में इतिहास लिखने की परम्परा नहीं थी। शासकगण अपना अधिकतर समय

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

राज्य का क्षेत्र बढ़ाने, अपनी विचारधारा का प्रचार करने आदि में व्यतीत करते थे। तथापि सभी के विषय में ऐसा नहीं कहा जा सकता। अनेकों राजाओं ने इन सबके अतिरिक्त कला एवं साहित्य के विकास तथा स्थापत्य पर भी ध्यान दिया। अधिकतर निर्माण-कार्य मंदिरों और महलों के ही रूप में कराये गये। आगे चलकर शिलालेख खुदवाने की परम्परा भी पाई जाती है। लेकिन जहाँ तक लेखन का प्रश्न है प्राचीन समय में धार्मिक ग्रन्थों के अतिरिक्त बहुत कम ही लिखा गया। यदि थोड़ा-बहुत लिखा भी गया है तो वह राजाओं की प्रशंसा आदि के सम्बन्ध में है। हाँ विदेशों से आये विभिन्न दूतों द्वारा लिखा गया वर्णन अवश्य अनेकों ऐतिहासिक तथ्यों को प्रकाशित करता है। इस प्रकार हम देखते हैं कि प्राचीन समय में इतिहास लिखने की परम्परा नहीं थी। अन्य जो कुछ लिखा भी गया, वह सुरक्षित नहीं है। हाँ शिलालेख और धर्मग्रन्थ अवश्य थोड़ा-बहुत प्रकाश डालते हैं।

अनेकों प्राचीन ऐतिहासिक नगरों पद्मावती तथा सिंहोनियां आदि से मिलकर बना यह भाग भारत के इतिहास में अपना अत्याधिक महत्व रखता है, परन्तु इसके सम्बन्ध में भी यही दशा है। यहाँ के बहुत से ऐतिहासिक तथ्य और ग्रन्थ नष्ट हो गए हैं और जो हैं भी उन पर पर्याप्त शोध न होने के कारण कुछ सीमित जानकारी के सहारे तथा अन्य स्थानों पर कल्पना शक्ति के ही सहारे आगे बढ़ना पड़ता है। फिर भी प्राचीन ग्रन्थों आदि से इस क्षेत्र के ऐतिहासिक दृष्टि से धनवान होने के उदाहरण मिलते हैं। अनेकों प्राचीन ग्रन्थों में पद्मावती, सिंहोनिया, गोपाद्री, गोपागिरी और गोपाचल आदि शब्दों का उल्लेख मिलता है।

वैसे इस दुर्ग के सम्बन्ध में सर्वप्रथम ऐतिहासिक प्रमाण सूर्यकुण्ड पर स्थित हूण और मिहिरकुल के एक शिलालेख द्वारा प्राप्त होता है[1] जिसका काल लगभग 515 ई. माना जाता है। इस काल के बारे में विशेष विवरण नहीं मिलता। इस कारण जैनों की स्थिति के बारे में कुछ निश्चित मत व्यक्त नहीं किये जा सकते। पर इतना निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि इस नगर निर्माण के काल से ही शनैः-शनैः जैन धर्मावलम्बी इस नगर में आकर बसने लगे थे।

इस समय ग्वालियर पर तोरमन और उसके पुत्र मिहिरकुल का आधिपत्य था। इनका शासन काल बड़ा दुखदायी रहा। सन् 533 ई. में यशोवर्मन द्वारा पराजित किये जाने पर वह काश्मीर भाग गया पर स्थिति में कोई सुधार नहीं हुआ। यशोवर्मन और उसके पुत्र नागवर्मन ने सन् 550 ई. तक यहां राज्य किया। इस प्रकार इन 80 वर्षों में राज्य की दशा बड़ी ही अस्थिर रही। इसके पश्चात् हर्ष के सम्राट होने पर उसने ग्वालियर पर भी कब्जा कर उसे अपने राज्य में मिला लिया। इसके राज्य में शान्ति रही, यद्यपि वह स्वयं बौद्ध मतावलम्बी था परन्तु वह धर्मान्ध नहीं था। अतः इसने सभी वर्गों को समान रूप से प्रगति के अवसर प्रदान किये। इसके कारण उसके काल में यहाँ जैन पर्याप्त मात्रा में थे और इस क्षेत्र में तभी से क्रियाशील हो उठे थे। वे धर्म प्रचार और साधना के अतिरिक्त अब संगठन, तथा मंदिरों के निर्माण पर भी ध्यान देने लगे थे।

प्रसिद्ध चीनी यात्री हुएनसांग इन्हीं के राज्यकाल में भारत आया था। उसने अपनी पुस्तक में एक स्थान पर जैन साधुओं की चर्चा करते हुए लिखा है—"निर्ग्रन्थ साधू अपने शरीर को नग्न रखते हैं और बालों को नोच डालते हैं। उनकी प्रधानता सारे देश में

---

1. आ. स. ई. रिपोर्ट, भाग 2, पृष्ठ 339 तथा भाग 20, पृष्ठ 107।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

थी, बल्कि भारत के बाहर भी वे फैले हुए थे।"[2] सन् 648 में हर्ष की मृत्यु हो गई और पुनः एक बार इस क्षेत्र में अराजकता जैसी स्थित निर्मित हो गई।

ग्वालियर के दो शैलोत्कीर्ण शिल्पांकन भी इसी काल के अंत की ही रचनाएँ प्रतीत होती हैं। इनमें से एक प्रतिमा में तीर्थंकर को कायोत्सर्ग मुद्रा में तथा दूसरी को पद्मासनस्थ ध्यानमुद्रा में अंकित किया गया है। पद्मासन-मुद्रावाले तीर्थंकर के पार्श्व में अंकित सेवक पूर्ण विकसित कमल पुष्पों पर खड़े हुए हैं। इन कमल पुष्पों को बौने (वामन) लोगों ने थाम रखा है, जो स्वयं मोटे कमलनाल जैसे दिखाई देते हैं। ऐसा ही लम्बी तालयुक्त कमल पुष्पों पर खड़े यक्षों का अंकन मथुरा संग्रहालय की (बी 6 तथा बी 7 क्रमांकित) दो सुन्दर मूर्तियों में भी पाया जाता है। खड्गासन तीर्थंकर-प्रतिमा के मूर्तन की तुलना राजगिरि की वैभार पहाड़ी स्थित दो खड्गासन प्रतिमाओं के मूर्तन से की जा सकती है। ग्वालियर की इन दोनों तीर्थंकर प्रतिमाओं में गुप्त-शैली का अनुकरण किया गया है। सेवक अलंकृत टोपी जैसे मुकुट तथा गले में एकावली धारण किये हुए हैं। तीर्थंकरों का परिकर परवर्ती गुप्तकालीन प्रतिमाओं की भाँति सुसज्जित न होकर यहाँ भी सादा रहा।[3]

आठवीं शती के सम्बन्ध में उपलब्ध ऐतिहासिक प्रमाणों से से इस बात की पुष्टि होती है कि आठवीं शती में गोपाचल क्षेत्र में जैन धर्म का क्रमबद्ध विकास प्रारम्भ हो गया था। कन्नौज के प्रतापी यशोवर्मन के पुत्र आम ने गोपाचल गढ़ को सन् 750 ई. में अपनी राजधानी बनाया था। आम ने वप्पभट्ट सूरि का शिष्यत्व ग्रहण किया था।[4] जैन प्रबन्धों के अनुसार आम नामक नरेश ने जो नौवीं शताब्दी में कन्नौज और ग्वालियर पर शासन करता था कन्नौज में एक मन्दिर का निर्माण कराया था, जो 100 हाथ ऊँचा था और जिसमें उसने तीर्थंकर महावीर की स्वर्ण प्रतिमा स्थापित करायी थी। उसने ग्वालियर में 23 हाथ ऊँची महावीर की प्रतिमा स्थापित की थी। यह भी कहा जाता है कि उसने मथुरा, अनहिल वाड़, मोढ़ेरा आदि में भी जैन मन्दिरों का निर्माण कराया था।[5] जैन परम्पराओं में उल्लिखित नरेश आम प्रतिहार नागभट्ट द्वितीय (मृत्यु 883 ई.) रहे होंगे, जो जैन धर्म के प्रति अपनी आस्था के लिये प्रसिद्ध रहे हैं। इस जैन परम्परा की सत्यता इन स्थानों से प्राप्त मध्यकालीन जैन अवशेषों द्वारा प्रमाणित होती है।

ग्वालियर के किले में अंबिका यक्षी और गोमेद यक्ष की शैलोत्कीर्ण सपरिकर प्रतिमाएँ उपलब्ध हैं। ललितासन में बैठी अँबिका के पार्श्व में, उनकी सेबिकाएँ हैं। इन प्रतिमाओं का निर्माणकाल लगभग आठवीं शताब्दी निर्धारित किया जाता है।[6] ये प्रतिमाएँ भारी आकार और रचना सौष्ठव के लिये विशेष उल्लेखनीय हैं, तथा कुषाण एवं गुप्तकालीन पांचिक

---

2. ट्रेवेल्स आफ हुएँनसांग, पृष्ठ 224।
3. जैन कला एवं स्थापत्य, खण्ड 1; भाग 3 (वास्तु स्मारक एवं मूर्तिकला) (300 से 600 ई.), अध्याय 12 (मध्यभारत)—डा. उमाकान्त प्रेमानन्द शाह।
4. प्रबन्ध कोष, पृष्ठ 27; प्रभावक चरित, पृष्ठ 99।
5. मजूमदार (आर. सी.) तथा पुसालकर (ए. डी.) सम्पादक—एज आफ इम्पीरियल कन्नोज, 1955, बम्बई, पृष्ठ 289।
6. ब्रून (क्लास) जिन इमेजेज आफ देवगढ़, 1969, लीडन, चित्र 18–18 A।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

एवं हारीति प्रतिमाओं के समनुरूप हैं। अंबिका यक्षी की मुखाकृति अण्डाकार है, नेत्र अर्द्ध निमीलित हैं, केश सज्जा धम्मिल्ल आकार का है, कसे हुए गोल स्तन हैं, ग्रीवा और कुक्षी पर त्रिवलियाँ हैं, उदर भरा हुआ तथा नितम्ब चौड़े हैं। यक्ष की प्रतिमा स्थूलकाय और लम्बी-चौड़ी है। उसकी तोंद मटके जैसी है।[7] ग्वालियर के किले में तीन स्वतन्त्र जैन प्रतिमाएँ भी विद्यमान हैं जो लगभग उसी काल की हैं। इनमें से एक प्रतिमा कायोत्सर्ग मुद्रा में आदिनाथ का अंकन है जिसके चारों ओर पद्मासन मुद्रा में तेईस तीर्थंकर अंकित हैं। इस प्रकार यह प्रतिमा एक चतुर्विंशति-पट्ट के रूप में है। दूसरी प्रतिमा में नन्दीश्वर द्वीप सहित तीर्थंकर आदिनाथ अंकित हैं। तीसरी प्रतिमा कायोत्सर्ग मुद्रा में पार्श्वनाथ की है। उनके शीर्ष पर नागफण का छत्र अंकित है तथा सुन्दर अर्द्ध मानवाकृति नागों द्वारा तीर्थंकर का जलाभिषेक करते दिखाया गया है। नागों के सिर पर लहरिया केश सज्जा है।[8] इस प्रकार आठवीं-नवीं शताब्दी में ग्वालियर में जैन धर्म का काफी प्रभाव था और इसी कारण जैन शिल्पांकन की दिशा में भी इस काल में बहुत कार्य हुआ।

कन्नौज के परिहार राजा भोजदेव ने भी कुछ समय के लिये इस दुर्ग पर अपना शासन स्थापित किया जिसका प्रमाण हमें किले के नीचे सागर ताल पर स्थित सन् 875 तथा सन् 876 के चतुर्भुज मन्दिर के शिलालेखों से प्राप्त होता है। इनके शासन काल में भी श्री वज्रदान नामक जैन साधू द्वारा सं. 1034 (सन् 977) में बैशाख वदी पंचमी के दिन जैन मूर्ति की प्रतिष्ठा कर उसे वहाँ स्थापित कराया।[9] इससे लगता है कि भोजदेव के काल में जैन धर्मावलंबियों की अच्छी दशा थी। इन्होंने 10 वी. शताब्दी तक शासन किया। दसवीं शताब्दी में पुन: वरजुमन कछवाहा के नेतृत्व में राजपूतों ने इस क्षेत्र तथा दुर्ग पर अपना शासन स्थापित किया।

वर्त्तमान सास-बहू के मन्दिरों का भी निर्माण इसी काल में हुआ। इस मन्दिर के लम्बे शिलालेख का पाठ दिगम्बर यशोदेव द्वारा रचित है। इससे प्रकट होता है कि महीपाल कच्छपघात के समय में भी ग्वालियर में जैन सम्प्रदाय की पूर्ण प्रतिष्ठा थी। ऐसा माना जाता है कि 105 फुट लम्बा, 75 फुट चौड़ा और 100 फुट ऊँचा यह मन्दिर महीपाल नामक राजपूत शासक द्वारा नन्दीश्वर द्वीप अष्टानिका के व्रत के उपलक्ष में जिनमन्दिर के रूप में बनवाया गया। यही कारण है कि उसमें देव-देवांगनाओं की नृत्य तथा अन्य मुद्राओं में मूर्तियाँ खुदी हैं। इसकी प्रतिष्ठा में पद्मनाभ क्षुल्लक आदि ने भी भाग लिया था। यह लगभग सन् 1036 में बनकर पूर्ण हुआ। इसके द्वारों, छत और दीवारों की खुदाई दर्शनीय है। यह सास-बहू के मन्दिर के नाम से प्रसिद्ध है। वर्त्तमान में कुछ इतिहासकारों ने इसका प्राचीन नाम सहस्त्रबाहु का मन्दिर बताते हुये इसे विष्णु मन्दिर भी कहा है।

भारत सरकार द्वारा सन् 1869 में ग्वालियर दुर्ग में कुछ ऐतिहासिक महत्व के स्थलों के उत्खनन् के अवसर पर प्राप्त, एक ताम्र चैत्य तथा चार तीर्थंकरों

---

7. जैन कला एवं स्थापत्य, खण्ड 1, भारतीय ज्ञानपीठ, भाग 4, वास्तु स्मारक एवं मूर्तिकला (600 से 1000 ई.) अध्याय 16, मध्यभारत, कृष्णदेव, पृष्ठ 177–78।
8. मेईस्तर (माइकेल डब्ल्यू); आम, अम्रोल एण्ड जैनिज्म इन ग्वालियर फोर्ट, जर्नल आफ दि ओरियन्टल इन्स्टीट्यूट, बड़ौदा, 22; 354–58।
9. ग्वालियर का अतीत, पृष्ठ 14।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

की ताम्र प्रतिमाएँ प्रस्तुत की गई हैं। ये चैत्य एवं तीर्थंकर प्रतिमाएँ 10-11 वीं सदी के लगभग किसी समय की प्रतीत होती हैं।[10]

नन्दीश्वर—

कला की दृष्टि से इनमें ताम्रचैत्य, प्रमुखतः उल्लेखनीय है। यह नीचे वर्गाकारों तथा ऊपर पिरामिड के आकार का बना है। 1 फीट 6·75 इंच ऊँचे इस नन्दीश्वर चैत्य के वर्गाकारी आधार का क्षेत्रफल 6.25 वर्गइंच है। नीचे के भाग में तीन वर्गाकार मंजिलें हैं, तीसरे वर्ग के ऊपर पिरामिड आकार का आमालक युक्त गुम्बद बना है। प्रत्येक वर्ग के चारों कोने पर स्तम्भ बने हैं। इन वर्गाकारी मंजिलों की ऊँचाई नीचे से ऊपर की ओर, क्रमशः कम है। इन वर्गों में चौबीस तीर्थंकरों के चित्र हैं, सबसे नीचेवाले (तल) वर्ग में प्रत्येक ओर खड्गासन मुद्रा में तीन-तीन तीर्थंकर इस प्रकार कुल बारह तीर्थंकर मुद्राएँ बनी हैं। इसके ऊपरवाले (मध्य) वर्ग पर प्रत्येक ओर पद्मासन (सम्प्रयँक) मुद्रा में दो-दो तीर्थंकर इस प्रकार आठ तीर्थंकर मुद्राएँ बनी हैं। यह वर्ग ऊँचाई में तल वर्ग की अपेक्षा कम ऊँचा है। इसके भी ऊपर सबसे कम ऊँचाई वाले तीसरे वर्ग में प्रत्येक ओर एक-एक इस प्रकार कुल चार तीर्थंकर मुद्राएँ अंकित हैं। इनमें तीर्थंकर पार्श्वनाथ की मुद्रा सभी से अलग प्रकार की होने के कारण आसानी से पहचानी जा सकती है। इसमें शीर्ष के ऊपर पंचफणी सर्प अंकित है। प्रत्येक तीर्थंकर मुद्रा के वक्ष पर प्रतीक स्वरूप श्रीवत्स अंकित है।

यह प्रतिमा जैन कास्मोलॉजी के अनुसार वर्णित द्वीपों में से एक द्वीप नन्दीश्वर द्वीप की प्रतीक स्वरूप है। इस द्वीप में 52 देवों एवं पवित्रात्माओं द्वारा जिन (तीर्थंकर) पूजा की जाने का जैन शास्त्रों में वर्णन प्राप्त होता है। तदनुसार यह द्वीप मन्दिरों, सभागृहों; नाट्यगृहों; सज्जित मंचों; सुन्दर स्तूपों, मूर्तियों एवं प्रतिमाओं, पवित्र चैत्य वृक्ष, इन्द्रध्वज तथा कमलयुक्त झील आदि से युक्त है। इन सभी मन्दिरों में अर्हत एवं जिन से सम्बन्धित पवित्र दिनों पर आठ दिवसीय पर्व मनाए जाते हैं। जैन धर्मावलम्बी इस वर्णन के अनुसार वर्ष में तीन बार आषाढ़, कार्तिक तथा फाल्गुन माहों में अष्टमी से पूर्णिमा तक आठ दिवसीय अष्टानिका पर्व मनाकर इस अवसर पर व्रत एवं पूजा आदि करते हैं।

चैत्य पर अंकित शब्द क्षतिग्रस्त हो गए हैं। तल मंजिल पर एक ओर "····ह्रीं ·· ···ना ·· दा··· धी" शब्द पढ़े गये हैं, इनके आधार पर कई पुरातत्व वेत्ताओं ने इसे 4-5वीं शती में निर्मित माना है, तथापि यह चैत्य 9-10वीं शती के लगभग या इससे पूर्व का अवश्य है।

छठवें तीर्थंकर पद्मप्रभ—

अन्य चार जिन प्रतिमाओं में एक छठवें तीर्थंकर पद्मप्रभ की है जिसकी ऊँचाई आधार सहित साढ़े पाँच इंच, तथा बिना आधार के साढ़े तीन इंच है। पद्मासन (सम्प्रयंक) अवस्था में बैठी इस मुद्रा के पृष्ठ भाग में नालन्दा कांस्य की शैली के चँवर बने हैं। आधार के

10. "Jaina Images & Places of first class Importence", T. N. Ramachandran. (Presidential adress during the All India Jaina Sasana Conference 194; Held on the occasion of the 2500th Anniversary of the first Preaching of lord Mahavir Swami; Calcutta) Publisher—Hony. Secy. Vira Sasana Sangha, 82 Lower Chitpur Road, Calcutta.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

रूप में बने आसन के मध्य पद्मासन के नीचे सामने की ओर तीर्थंकर पद्मप्रभ का लांछन कमल व प्रतिमा के शीर्ष पर ऊष्णिस एवं घुंघराले बाल दृष्टव्य हैं।

दूसरी प्रमुख प्रतिमा आठवें तीर्थंकर चन्द्रप्रभ की है। कुल साढ़े दस इंच ऊँची इस प्रतिमा में तीर्थंकर मुद्रा मात्र ही साढ़े पाँच इंच ऊँचाई की है। सम्प्रयक में भद्रासन अवस्था में बैठी मुद्रा की इस जिन प्रतिमा के पृष्ठ भाग में नालन्दा जैसी उन्नत कला दर्शनीय है। प्रतिमा के पृष्ठ भाग में प्रभामण्डल कलात्मक स्वरूप लिये हुए है। प्रतीक स्वरूप तीर्थंकर चन्द्रप्रभ का लांछन अर्द्धचन्द्र तथा वक्ष के मध्य श्रीवत्स का चिन्ह अंकित है। इनकी शैली के आधार पर सुनिश्चित रूप से इनका निर्माण काल 10-11वीं शती कहा जा सकता है।

कच्छपघात वज्रदामन ने भी जैन सम्प्रदाय को प्रश्रय दिया था। वि. सं. 1034 (सन् 977 ई.) में वज्रदामन के राज्यकाल में ग्वालियर में जैन मूर्तियों की स्थापना की गई थी।[11]

इस प्रकार यह निश्चित है कि 11वीं शताब्दी में एक जिन मन्दिर तथा कुछ जैन मूर्तियाँ गोपाचगलढ़ पर निश्चय ही स्थित थीं। कच्छपघात मूलदेव (भुवनैकमल्ल) के राज्य में राज्याधिकारियों ने इस मन्दिर में जैन भक्तों का निर्बाध प्रवेश बन्द कर दिया था। मलधारी गच्छ के श्री अभयदेव सूरि के आग्रह पर महावीर स्वामी के इस मन्दिर के द्वार समस्त जैन जनता के लिये उन्मुक्त कर दिये गए थे।[12]

सन् 1844 ई. में जनरल कनिंघम ने ग्वालियर दुर्ग पर स्थित सास-बहू के मन्दिरों के निकट अत्यन्त जीर्ण-शीर्ण अवस्था में स्थित 35 फुट लम्बे तथा 15 फुट चौड़े खंडहर कमरे के संबंध में किये गये शोध-कार्य के आधार पर उसे जैनियों के 23वें तीर्थंकर पार्श्वनाथ का मन्दिर माना है, और इसका निर्माण-कार्य सन् 1108 ई. के लगभग सम्पन्न होना माना है। उसके पूर्ण सर्वेक्षण, आसपास किये गये खुदाई के कार्य और स्तम्भों के आधार पर उसका क्षेत्र पीछे 50 फुट और होना बताया है। उसके अनुसार यह मन्दिर लगभग 69 फीट लम्बे तथा 15 फीट चौड़े क्षेत्र में फैला था।

इसके निर्माण का समय (सन् 1108 ई.) इस बात की साक्षी देता है कि यह मन्दिर कछवाहों के शासन काल में ही निर्मित किया गया। इससे इस बात पर प्रकाश पड़ता है कि इनके शासन काल में भी जैन अच्छी अवस्था में थे। विस्तृत ऐतिहासिक विवरण के अभाव में यह कहना अत्यंत कठिन है कि किस राजा ने दुर्ग पर इस मन्दिर का निर्माण करवाया अथवा निर्माण हेतु स्वीकृति प्रदान की। इससे भी यह प्रतीत होता है कि इसके भी शताब्दियों पूर्व से जैन इस क्षेत्र में अपना अस्तित्व रखते थे और शनैः-शनैः वे इतने प्रभावशाली हो गये कि वे शासक एवं शासन को भी प्रभावित कर मन्दिर निर्माण करा सके।

इस काल के ग्वालियर के निकटवर्ती क्षेत्रों में भी जैन मूर्तियों व शिलालेखों का निर्माण हुआ। दूबकुण्ड (श्योपुर) के वि. सं. 1145 (सन् 1088 ई.) के विक्रमसिंह के शिलालेख से ज्ञात होता है कि इस क्षेत्र के कच्छपघात भी जैन सूरियों को प्रश्रय देते थे। शान्तिषेण सूरि और उनके शिष्य विजयकीर्ति द्वारा वह प्रशस्ति लिखी गयी

11. ग्वालियर राज्य अभिलेख, क्र. 20।
12. संगीतोपनिषत्सार, गायकवाड़ ओरियन्टल सीरिज, प्रस्तावना, पृष्ठ 7।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

थी।[13] दूवकुण्ड के जैन मन्दिर के वि. सं. 1152 (सन् 1095 ई.) के शिलालेख से ज्ञात होता है कि वहाँ काष्ठासंघ के महाचार्यवर्य श्री देवसेन के पादुका चिन्ह की पूजा होती थी।[14] नरवर में भी वि. सं. 1314 (सन् 1257 ई.) से 1324 (सन् 1267 ई.) के मूर्तिलेखों से युक्त सैकड़ों मूर्तियाँ नरवर में प्राप्त हुई हैं।

जो कुछ भी ज्ञान उपलब्ध है उसके आधार पर यह कहा जा सकता है कि यहाँ जैन धर्मावलंबियों के परिवार मात्र निवास ही नहीं करते थे वरन् यहाँ जैनियों के संघ भी संचालित थे जिनमें संघाधिपति तथा अन्वय हुआ करते थे। इतना ही नहीं वे नियमित विद्यापीठ का भी संचालन करते थे। 15वीं शताब्दी में बनी मूर्तियों से प्राप्त जानकारी से ये तथ्य पुनः परीक्षित होते हैं।

सन् 1122 ई. में परिहारों ने इस वंश के अन्तिम राजा तेजकरण को निकाल दिया और स्वतः राजा बन बैठे थे। परिहार वंश के कुल 7 राजाओं ने इस दुर्ग पर राज्य किया। इस बीच में एक बार सन् 1196 ई. में कुतुबुद्दीन ने ग्वालियर पर आक्रमण कर दुर्ग पर अपना अधिकार स्थापित किया परन्तु उनके हाथों में यह दुर्ग अधिक न रह सका और 16 वर्ष बाद सन् 1212 में परिहारों ने पुनः दुर्ग को वापस ले लिया और सन् 1232 तक अपने अधिकार में रखा। सन् 1232 में अल्तमश ने तत्कालीन परिहार शासक सारंग देव पर भारी फौज सहित आक्रमण किया और 11 मास तक दुर्ग को घेरे रहा। अन्त में सारंगदेव ने स्वयं किले से निकलकर मुसलमानों से युद्ध किया। युद्ध के लिये राजा को जाते देख रानियों ने कहा—

"पहले हमें जु जौहर पारी,
तब तुम जूझो कन्थ सम्हारी"

यह कहकर 70 रानियाँ किले में आग में कूदकर बलिदान हो गईं। आज भी इस जौहर की स्मृति में जौहरताल का नाम विख्यात है। उरवाई दरवाजे पर इस घटना का उल्लेख करनेवाला शिलालेख सन् 1805 ई. तक पाया गया है। इस युद्ध में राजा भी अपने 15 साथियों के साथ काम आए तब कहीं मुसलमान इस किले पर कदम रख पाये। इसके बाद सन् 1318 ई० तक यह दुर्ग मुसलमानों के अधिकार में रहा। उन्होंने इसे राजकीय कैदखाने के रूप में प्रयोग किया। इस प्रकार ग्वालियर का यह प्रदेश 166 वर्षों तक लूट-खसोट और अत्याचार से आतंकित रहा।

पर कभी किसी का शासन स्थायी नहीं रहा। जब तैमूर लंग ने भारत के अन्दर ऊधम मचाया तो मुस्लिम सत्ता डांवाडोल हो गई और वीरसिंह तंवर[15], जो कि सन् 1375 ई में मुस्लिमों की ओर से किलेदार नियुक्त हुआ था, ने अवसर पाकर दुश्मनों को परस्पर लड़ाकर बडी चतुराई के साथ इस किले पर अपना अधिकार कर लिया। इसने सम्भवतः सन् 1380 ई. में अपना राज्य स्थापित किया। यह बड़ा पराक्रमी और विवेकी तथा राजनीति में दक्ष शासक था।

---

13. ग्वालियर राज्य के अभिलेख, क्र. 24।
14: वही, क्र. 58।
15. जात. श्रीवीरसिंहः सकलरि पुकुलव्रातनिर्घातपातो,
वंशे श्रीतोमराणां निजविमलयशोख्यातदिक्चक्रवालः।
दानैर्माने विवेकैर्न भवति समता येन साकं नृपाणां,
केशामेषा कवीनां प्रभवति घिषणा वर्णने तद्गुणानां॥ —यशोधरचरित प्रशस्ति

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इसके पश्चात् इसका पुत्र उद्धरणदेव अपने पिता की गद्दी पर बैठा।[16] शासन प्राप्ति के बाद यह कुल दो वर्ष ही जीवित रहा। इसके काल के संबंध में विशेष विवरण प्राप्त नहीं है। सन् 1402 ई. के लगभग उद्धरणदेव का पुत्र वीरमदेव गद्दी पर बैठा।[17] यह बड़ा पराक्रमी था। इसके काल में मल्लू इकबाल खाँ ने इस पर आक्रमण किया परन्तु वह वीरमदेव को हराने में असफल रहा। इसके दरबार में कुशराज नाम का विश्वासपात्र महामात्य था। यह जैसवाल जैन कुल में उत्पन्न हुआ था, इसके पिता का नाम जैनपाल और माँ का नाम लोणा देवी था। यह राजनीति में बड़ा ही दक्ष और पराक्रमी था।[18] यह सदा जैनेन्द्र की सेवा में रत रहता था। यह अपनी भार्या रल्हो और लक्ष्मणश्री तथा पुत्र कल्याणमल्ल और उसकी भार्या जयतम्हिदे इत्यादि परिवार के कल्याण के लिये उस यंत्र की पूजा करता था। इसकी एक तीसरी भार्या कौशीरा थी।

इसने भ. विजय कीर्ति के उपदेश से ग्वालियर में चन्द्रप्रभु का एक विशाल मन्दिर बनवाया था और भारी धूमधाम से उसका प्रतिष्ठोत्सव समारोह आयोजित किया। इस अवसर पर जौनार (सामूहिक भोज) भी आयोजित की गई। चन्द्रप्रभु का यह मन्दिर ही बाद में शेख मोहम्मद गौस का निवास-स्थान बना जिसे आजम हुमायूँ ने भ्रष्ट कर दिया था। इस घटना का विस्तृत उल्लेख आगे उपलब्ध है।

राजा का विश्वासपात्र महामात्य जैन होने के कारण वीरमदेव के शासन काल में जैन धर्मावलंबियों को विकास का अच्छा अवसर मिला। कुशराज ने

---

16. ईश्वर चूडारत्नं विनिहत करघातवृत्तसंहातः।
चन्द्र इव दुर्ग्धसिंधोस्तस्मादुद्धरणभूपतिर्जनितः॥ —यशोधरचरित प्रशस्ति

17. तत्पुत्रो वीरमेन्द्रः सकलवसुमतीपालचूडामणिर्यः।
प्रख्यातः सर्वलोके सकलबुधकलानन्दकारी विशेषात्।
तस्मिन् भूपालरत्ने निखिलनिधिगृहे गोपदुर्गे प्रसिद्धि,
भुंजाने प्राज्यराज्यं विगतरिपुमयं सुप्रजः सेव्यमानः॥—यशोधरचरित प्रशस्ति

18. वंशेऽभूज्जैसवाले विमलगुणभूंलणः साधुरत्नं,
साधुश्री जैनपालो भवदुदितयास्तत्सुतो दानशीलः।
जैनेन्द्रः राधनेसु प्रमुदित हृदयः सेवकः सद्गुरूणां,
लोणाख्या सत्यशीलाऽजनि विमलमतिर्जेनपालस्य भार्या
जातः षट्तनयास्तयोः सकृतिनोः श्रीहंसराजोभवत्,
तेषामाद्यतमस्ततस्तदनुजः सौराजनामाऽजनि।
रैराजोभवराजकः समजनि प्रख्यातकीर्तिमहा—
साधुश्री कुशराजकस्तदनु च श्री क्षेमराजो लघुः॥6॥
जाताः श्रीकुशराज एव सकलक्ष्मापालचूडामणेः,
श्रीमत्तोमर-वीरमस्य विदितो विश्वासपात्रं महान्।
मंत्री मंत्रविचक्षणः क्षणमयः क्षीणारिपक्षः क्षणात्।
क्षेणीमीक्षणरक्षणमतिर्जैनेन्द्रपूजारतः॥7॥ —यशोधरचरित प्रशस्ति

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

दरबार के ही एक अन्य कायस्थ विद्वान पद्मनाभ से भ. गुणकीर्ति के आदेशानुसार "यशोधर चरित्र" (दया सुन्दर विधान) नामक काव्य की रचना करवाई। इसके शासनकाल की संवत् 1460, 1468, 1469 और 1479 की लिखी हुई चार ग्रन्थलिपि प्रशस्तियाँ अभी भी उपलब्ध हैं। सं. 1460 में गोपाचल में साहू वरदेव के चैत्यालय में भ. हेमकीर्ति के शिष्य मुनि धर्मचन्द ने माघ वदी दशमी के दिन "सम्यकत्व कौमुदी" की प्रति आत्मपठनार्थ लिपिबद्ध की।[19] सं. 1468 में आषाढ़ वदी 2, शुक्रवार के दिन काष्ठा संघ, माथुरान्वय के आचार्य श्री भावसेन, सहस्त्रकीर्ति और भ. गुणकीर्ति की आम्नाय में साहू मरूदेव की पुत्री देवसरि ने 'पंचास्तिकाय" टीका की प्रतिलिपि लिपिबद्ध कराई थी। जो इस समय कारंजा के शास्त्र भण्डार में उपलब्ध है।[20]

संवत् 1469 में आचार्य अमृतचन्द कृत प्रवचन सार्थी की "तत्वदीपिका" टीका लिखी गई। सन् 1479 में आषाढ़ सुदी 5 बुधवार के दिन गढ़ोत्पुर के नेमिनाथ चैत्यालय में जौतुका स्त्री सरो ने अपने ज्ञानवर्णी कर्मों के क्षयार्थ "षटकर्मोपदेश" की एक प्रति लिखकर जैत श्री की शिष्या विमलमति को पूजा विधान महोत्सव के साथ समर्पित की थी जिसे पंडित रामचन्द्र ने लिखा था। यह प्रति आमेर के भण्डार में सुरक्षित है।

वीरमदेव के पश्चात् उसका पुत्र गणपतिदेव गद्दी पर बैठा। उसका राज्यकाल अल्प रहा, जिसका विवरण उपलब्ध नहीं है।

सन् 1424 में गणपतिदेव के पुत्र डूंगरसिंह तँवर गद्दी पर आसीन हुए। यह बड़े ही वीर और पराक्रमी शासक थे। उसने शासन सँभालते ही अपनी सेना संगठित कर मालवे की राजधानी मांडू पर आक्रमण कर वहाँ के राजा हुशंगशाह को परास्त किया। संभवतः इसी विजय में इनके हाथ कोहिनूर नामक विश्वप्रसिद्ध हीरा लगा। इस प्रकार उसने अपने राज्य की सीमा और बढ़ाकर अपनी स्थिति और सुदृढ़ कर ली। इसके काल में राज्य में सभी प्रकार की सुख शांति थी। इससे निकटवर्ती राज्यों के शासकों की ललचाई दृष्टि सदैव इसके राज्य पर लगी रहती थी और यदा-कदा ग्वालियर पर आक्रमण होते रहते थे। राजा डूंगरसिंह ने सभी का डटकर मुकाबला किया और सभी में विजयी रहे। विभिन्न लेखकों ने इसकी वीरता का वर्णन करते हुए लिखा है कि "वह अनेक राजाओं द्वारा पूजित

---

19. सम्वत् 1460 शाके 1325 षष्ठाब्दयोर्मध्ये विरोधी नाम संवत्सरे प्रवर्तत गोपाचल दुर्गस्थाने राजा वीरमदेव राज्य प्रवर्तमाने साहु वरदेव चैत्यालये भ. श्री हेमकीर्तिदेव तत्शिष्य मुनि धर्मचन्द्रेण आत्मपठनार्थ पुस्तकं लिखितं माघ वदि 10 भौमदिने।

—तेरापंथी मन्दिर जयपुर, शास्त्र भण्डार

20 संवत्सरेस्मिन् विक्रमादित्य गताब्द 1468 वर्ष आषाढ़ वदि 2 शुक्र दिने श्री गोपाचले राजा वीरमेदेव विजय राज्य प्रवर्तमाने श्री काष्ठासंघे माथुरान्वये पुष्कर गण आचार्य श्री भावसेनदेवाः तत्पट्टे श्री सहस्त्रकीर्तिदेवाः तत्पट्टे भट्टारक श्री गुणकीर्तिदेवास्तेषामाम्नाये संघई महाराजवधू साधु मरदेव पुत्री देवसिरी तथा इदं पंचास्तिकायसार ग्रंथ लिखापितम्।

—कारंजा भण्डार, जयपुर

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तथा सम्मानित था। और शत्रुओं का मान मर्दन करने में दक्ष था।[21]" युद्ध-स्थल में उसके समान कोई वीर योद्धा नहीं था।[22] नरवर गढ़ में स्थित विजय स्तम्भ (जैत स्तम्भ) अभी भी इसकी साक्षी दे रहा है।

परन्तु इन सब विजय अभियानों में व्यस्त रहते हुए भी उसका ध्यान विद्वानों, धार्मिक समारोहों और निर्माणों की ओर भी गया। इसने जैन धर्म के सिद्धांतों को अपने जीवन में अपनाया। जैन धर्म से उसका अनुराग मात्र ही नहीं था किन्तु उस पर उसकी परम आस्था थी। वे जैन धर्म के प्रबल पोषक थे। वह जैन विद्वानों एवं संतों को बड़े ही आदर की दृष्टि से देखता था।

इसके राज्यकाल में ही ग्वालियर गढ़ की चट्टानों में जैन प्रतिमाओं के उत्खनन के कार्य का प्रारम्भ हुआ। सन् 1440 ई. के तीन शिलालेख इस बात के सूचक हैं कि इनके आश्रय में अनेक जैन धर्मावलम्बियों ने दुर्ग के चारों ओर जैन प्रतिमाओं के खुदवाने का कार्य प्रारम्भ कर दिया। इन अभिलेखों में जैनाचार्य देवसेन, यशकीर्ति, जयकीर्ति, आदि भट्टारकों का भी उल्लेख मिलता है। इस कार्य पर करोड़ों रुपये व्यय हुए तथा कुल 33 वर्ष का समय लगा। डूंगरसिंह अपने जीवनकाल में इसे पूरा नहीं करा सका। तब उसके प्रिय पुत्र कीर्तिसिंह ने उसे पूरा कराया।

डूंगरसिंह के राज्य में ग्रन्थ निर्माण और मूर्ति प्रतिष्ठा

मूर्ति निर्माण के अतिरिक्त राजा डूंगरसिंह के समय में ग्वालियर के जैन धर्मानुयायी श्रावकों ने ग्रन्थ निर्माण और मूर्ति प्रतिष्ठा का भी कार्य सम्पन्न कराया। सन् 1429 में भ. गुणकीर्ति के शिष्य भ. यशकीर्ति ने आत्म पठनार्थ, "सुकुमाल चरित"[23] और कवि श्रीधर की "संस्कृत भविष्य दत पंचमी"[24] कथा की प्रतियाँ लिखवाई थीं। इसके अतिरिक्त उन्होंने हरिवंश पुराण,

---

21. श्री तोमरानुर्कोशिखामणित्वं, यः प्रापभूपालशताचितांघ्रिः।
श्री राजमानो हतशत्रुमानः।, श्री डूंगरेदोऽत्र, नराधिपोऽस्ति ॥

समयसार लिपि प्र० सेनगण भण्डार, कारंजा

22. .... भुयबल पराणु, समरंगणि अण्णु ण तहु समाणु।
णिरुवम अविरल गुण मणि णिकेउ, ... ।
साहणसमुद्दु जयसिरिणिवासु, जस ऊयरि पउरियदहदिसासु ।
जस करवाल णिहाएं अरि-कवाल, तोडि वि घल्लिउ णं कमलणालु।
दुपिच्छ मिच्छ रणरंगु मल्लु, अरियणकामिणिमण दिण्णु सल्लु।

-- सम्मतत्तगुणनिधान प्रशस्ति

23. —सवत् 1468 वर्ष अश्वणि वदि 13 सोमदिने गोपाचलदुर्गे राजा डूंगरसिंहथेव देवविजयराज्य प्रवर्तमाने श्री काष्ठासंघे माथुरान्वये आचार्य श्री भावसेन देवास्ततपट्टे श्री सहस्त्रकीति देवास्ततपट्टे श्री गुणकीर्ति देवास्तत्शिष्येन श्री यशः कीतिदेवन निजज्ञानावरणी कर्म क्षयार्थ इदं सुकमाल चरित लिखापितं। कीयस्थ याजनापुत्र थलू लेखनीयं। ...... जयपुर भण्डार।

24. संवत् 1486 वर्ष आषाढ़ वदि 9 गुरुदिने गोपाचलदुर्गे राजा डूंगरसिंह राज्य प्रवर्तमाने श्री काष्ठासंघे माथुरान्वये पुष्करगणे आचार्य श्री सहस्त्रकीति देवास्ततपट्टे आचार्य गुणकीर्ति देवास्तच्छिष्य यशःकीति देवास्तेन निजज्ञानावरणी कर्म क्षयार्थ इदं भविष्यदत्त पंचमी कथा लिखापितं ..... नया मंदिर धर्मपुरा दिल्ली

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

रात्रि भोजन कथा, रविवार व्रत कथा, चन्द्रनाथ चरित्र आदि 23 ग्रन्थ भी लिखे थे। ये सं. 1486 तक रहे।

सम्वत् 1492 से पूर्व अग्रवाल वंशज साहू खेमसिंह के पुत्र साहू कमलसिंह ने 11 हाथ ऊँची आदिनाथ की एक विशाल मूर्ति का निर्माण कराया। इसके प्रतिष्ठोत्सव में राजा डूंगरसिंहजी ने शासन से पूरा सहयोग प्रदान किया और ताम्बूल आदि से उसका सम्मान किया।[25]

संवत् 1492 में साहू कमलसिंह ने कवि रईधू से "सम्मत गुण निधान" नामक ग्रन्थ की रचना करवाई जो भाद्रपाद मास के पूर्णिमा के दिन समाप्त हुई। इस ग्रन्थ की रचना करने में कवि को 3 मास का समय लगा। इसके बाद कवि रईधू ने "नेमिनाथ चरित्र", "पार्श्वनाथ चरित्र" तथा "बलभद्र चरित्र" (रामायण) नामक ग्रन्थों की रचना की। सं. 1496 में रचे गये "सुकौशल चरित्र" नामक ग्रन्थों में इन ग्रन्थों की रचना का उल्लेख किया गया है। ये जाति के पदमावती पुरवाल थे। इनके पिता का नाम हरिसिंह सिंगी था।

बलहद्द चरिउ में केवल हरिवंश पुराण (नेमिजन चरिउ) के रचे जाने का भी उल्लेख मिलता है। हरिवंश पुराण में त्रिषष्ठिशलाका चरित (महापुराण), मेघेश्वर चरित्र, यशोधर चरित्र, वृत्तसार और जीवंधर नामक 6 अन्य ग्रन्थों का भी उल्लेख किया गया है। ये सभी सं. 1496 से पूर्व के रचे गये हैं। सम्मईजिन चरिउ प्रशस्ति में मेघश्वर चरित, त्रिषष्ठि महापुराण, सिद्धचक्रविधि, बलहद्द चरिउ, सुदर्शन चरित और धन्यकुमार चरित नामक ग्रन्थों का भी उल्लेख है। संभवतः ये सभी ग्रन्थ कवि रईधू ने सं. 1492 और 1496 के काल में लिखे हैं। इनमें एक और ग्रन्थ "आत्म संबोध काव्य" की 29 पत्रात्मक जीर्ण प्रति भी उपलब्ध हुई है।[26] जो संवत् 1448 की लिखी हुई है। रईधू के काल में ग्वालियर में जैन धर्म एवं संस्कृति अत्यधिक सम्पन्न अवस्था में थी। डूंगरेन्द्रसिंह और कीर्तिसिंह के काल में गढ़ के नीचे नगर में बहुत से जैन मन्दिर बने थे। रईधू ने लिखा है कि—"नगर जैन मन्दिरों से विभूषित था और श्रावक दान-पूजा में निरत रहते थे।"........ "नैमिनाथ, चन्द्रप्रभु और वर्द्धमान के जैन मन्दिर थे और उनके पास बिहार भी बने थे।" स्वयं रईधू ऐसे ही बिहार में रहता था। अलवर और चौरासी मथुरा के जैन मन्दिरों में ग्वालियर के तौमरों के उल्लेख युक्त प्रतिमाएँ इन्हीं जैन मन्दिरों की हैं। इससे प्रतीत होता है कि कविवर रईधू दीर्घजीवी रहे होंगे। उपलब्ध ग्रन्थों से उनका रचनाकाल सं. 1448 से सं. 1525 तक का उपलब्ध होता है।

सं. 1497 में "परमात्म प्रकाश" ग्रन्थ की सटीक प्रति की रचना की गई।[27] इसी वर्ष पांडु पुराण भी अपभ्रंश भाषा में लिखा गया। सं. 1506 में धनपाल की "भविष्यदत्त पंचमी कथा" तथा सं. 1510 में "समय सार" नामक ग्रन्थों की प्रतिलिपि की गई।[28]

---

25. —जो देवाहिदेव तित्थंकरु, आइणाहु तित्थोय सुहंकरु।
तहु पडिमा दुग्गइ—णिण्णासणि, जामिच्छत—गिरिंद—सरासणि,
जामहिरो—सोय दुह—णासणि

26. संवत 1448 वर्षे फाल्गुण वदि 1 गुरौ दिने श्रावग लष्मण कम्मक्षय विनाशार्थ लिखितं। "—यह आमेर भण्डार जयपुर में अभी भी सुरक्षित है।

27. यह अभी भी जयपुर के ठोलियों के मन्दिर के शास्त्र भण्डार में सुरक्षित है।

28. यह अभी भी कारंजा के शास्त्र भण्डार में सुरक्षित है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उनके अतिरिक्त ज्ञानार्णव, चन्द्रप्रभु चरित्र तथा परिमाल कवि आगरा द्वारा श्रीपाल चरित्र आदि लिखे गये। सं. 1497 और सं. 1510 में प्रतिष्ठापित मूर्तियों के लेख उपलब्ध हैं।[29]

शाह टोडरमल जी, दोल जी काशलीवाल भी उनके काल में ही मारवाड़ से ग्वालियर आये थे। उस समय तोमर व कछवाय जैन मत पालते थे। उन्होंने पहाड़ी पर गुफा व जैन मन्दिर के निर्माण भी कराये।

वे जैनधर्म से बड़ा प्रभावित थे। तत्कालीन भ. गुणकीर्ति के प्रति इसके हृदय में असीम श्रद्धा थी। उनके उपदेशामृत से इसने जैन धर्म स्वीकार किया। इस काल में गुणकीर्ति उनके शिष्यों तथा प्रशिष्यों का भी जैन धर्म एवं जैन संस्कृति के प्रचार एवं प्रसार में सर्वाधिक योगदान रहा। इसके काल में अनेकों मूर्तियों का निर्माण हुआ तथा प्रतिष्ठायें करवाई गईं। इसके काल में प्रजा सुखी तथा समृद्ध थी। इसने कुल 30 वर्ष तक ग्वालियर पर शासन किया।

इसके पश्चात् कीर्तिसिंह या कीर्तिपाल गद्दी पर बैठा। यह डूंगरसिंह का पुत्र था।[30] यह अपने पिता के समान ही गुणज्ञ, बलवान और राजनीति में चतुर था।[31] यह पराक्रमी होने के साथ-साथ दयालु, सहृदय और प्रजा वत्सल भी था। इसने लगभग सन् 1424 में शासन भार ग्रहण किया।

इसने अपने राज्य को और भी बढ़ाया। इसके समय के दो लेख 1468 और 1473 ई. के मिले हैं। इसकी मृत्यु सन् 1479 में हुई थी अतः इसका राज्यकाल 1479 तक माना जाता है।

यह जैन धर्म में अत्याधिक आस्था रखता था। इसने अपने पिता द्वारा अधूरे छोड़े गये मूर्तियों के उत्खनन के कार्य को पूरा कराया। इसका काल सं. 1522 से 1531 तक मिलता है। इस काल में अनेकों नई मूर्तियाँ भी प्रतिष्ठित हुईं, जिनमें अंकित लेखों में कीर्तिसिंह का उल्लेख मिलता है। उदाहरणार्थ—बाबा की बावड़ी के दाहिनी ओर बनी पार्श्वनाथ की मूर्ति पर लिखे अभिलेख में महाराजा कीर्तिसिंह का विवरण दिया है। इस खड्गासन मूर्ति के निकट ही नौ अन्य मूर्तियाँ भी खुदी हैं जिनमें कुछ पदमासन भी हैं। इनके मुख खंडित कर दिये गये हैं।

इन मूर्तियों का निर्माण मूर्तिकला के क्षेत्र में इस प्रदेश के कारीगरों का अभिनव प्रयास था जिसके अन्तर्गत वि. सं. 1530 तक के 33 वर्ष के थोड़े समय में ही दुर्ग की ये बेडोल और मूक चट्टानें विशालता, वीतरागिता, शान्ति, एवं तपस्या की भाव व्यंजना से मुखरित हो उठीं। गढ़ के चारों ओर खुदी हुई इन विशाल मूर्तियों को देखकर ऐसा प्रतीत होता है कि इन मूर्तियों के निर्माणकर्त्ता अपनी श्रद्धा और भक्ति के अनुकूल विशाल प्रतिमाओं का निर्माण करना अथवा कराना चाहते होंगे। अतः इससे प्रेरित होकर उत्कीर्णकों ने निर्मापक की निर्मल भावनाओं को साकार रूप प्रदान करने के उद्देश्य से उस विशालता में सौन्दर्य का और समावेश कर कला की अपूर्व कृतियों का निर्माण किया। प्रतिमाओं के ये समूह दुर्ग के विभिन्न अंचलों में बने हैं जो गुहा मन्दिरों के नाम से जाने जाते हैं। ये असंख्य छोटे-बड़े मन्दिर संख्या और आकार की दृष्टि से उत्तर भारत में अद्वितीय हैं। मूर्तिकला और मन्दिर स्थापत्य दोनों में अद्भुत सामंजस्य स्थापित है। सबसे

---

29. देखो जनरल एशियाटिक सोसाइटी, भाग 31, पृ. 423 गोपाचल दुर्गे तोमरवंशे राजा श्री गणपति देवास्त पुत्रों महाराजाधिराज श्री डूंगरसिंह राज्ये (प्रतिष्ठितं) चौरासी मथुरा की मूलनायक मूर्ति का लेख।
30. कवि रईधू—श्रीपाल चरित्र
31. समयसार लिपि, प्र० शास्त्र भन्डार, कारंजा।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रमुख विशेषता यह है कि इनका निर्माण राजाओं ने नहीं वरन् तत्कालीन जैन व्यापारियों व अन्य श्रावकों ने करवाया। अनेक जैन महिलाओं ने भी इसके निर्माण के लिये दान दिये थे। इस कार्य में हजारों शिल्पकारों ने भाग लिया, जिनके कुशल हाथों ने लगभग डेढ़ मील लम्बे गोपाचल दुर्ग को उत्कीर्ण करने योग्य कोई कोना शेष नहीं छोड़ा। इन सारी प्रतिमाओं को 5 समूहों में विभाजित किया जा सकता है।

(1) **उरवाही समूह:**—उरवाई द्वार पर कुल 22 जैन मूर्तियाँ हैं। इनमें से 6 मूर्तियों पर सं. 1497 (सन् 1440 ई.) से सं. 1510 (सन् 1453 ई.) के अभिलेख खुदे हैं। इनमें 20 नम्बर की आदिनाथ की मूर्ति सबसे विशाल है। बाबर ने अपने "बाबरनामा' में इसकी ऊँचाई 20 गज अनुमान की थी। परन्तु वास्तव में यह 57 फुट ऊँची है। इसकी चरण चौकी पर सं. 1497 लिखा है। वर्तमान में इसके नीचे का कुछ भाग मिट्टी में दब गया है। यह चरणों के पास 9 फुट चौड़ी है। यहीं 22 नम्बर की नेमिनाथ की पदमासन मूर्ति है। जो 30 फुट ऊँची है। नेमिनाथ की इतनी विशाल मूर्ति शायद ही अन्यत्र कहीं हो।

(2) **दक्षिण पश्चिम समूह:**—यह खंभा ताल के नीचे उरवाई द्वार की बाहर की शिला पर है। इसमें 5 मूर्तियाँ हैं। 1 नम्बर के प्रतिमा समूह में एक स्त्री, पुरुष तथा बालक की मूर्तियाँ हैं। 2 नम्बर में एक 8 फुट लम्बी लेटी हुई स्त्री की प्रतिमा है जो 8 फुट लम्बी है। इस पर ओप किया हुआ है। प्रारम्भ में कुछ लोग इसे बुद्ध भगवान की मूर्ति बताते थे। परन्तु विशेष शोध करने के पश्चात् इतिहासकार इसी निष्कर्ष पर

(ग्वालियर दुर्ग पर उत्थित पदमासस मुद्रा में विशाल जैन प्रतिमा)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

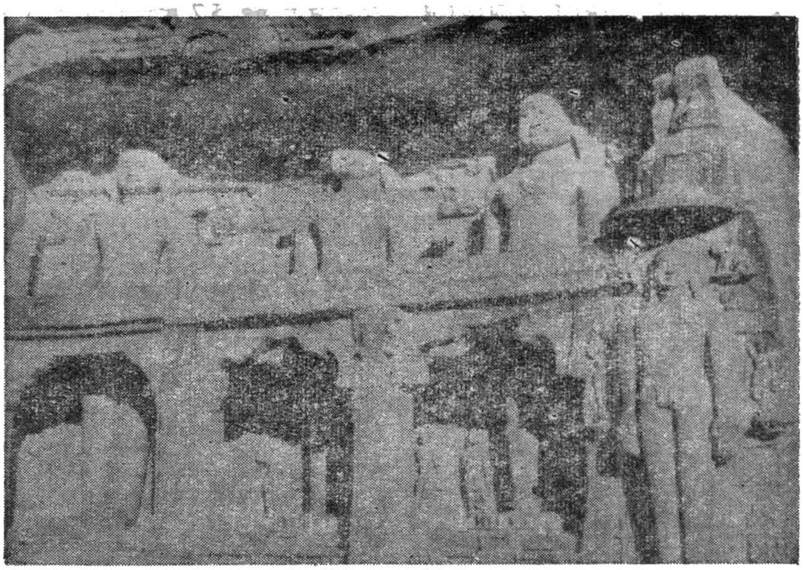

एक पत्थर की बावड़ी पर स्थित गुहा मन्दिर में उत्खनित विशाल जैन प्रतिमाओं के समूह का एक दृष्टि)

पहुँचे कि ये जैन मूर्तियाँ हैं। संभवतया यह त्रिशला माता तथा महावीर की मूर्ति है। कला की दृष्टि से इन मूर्तियों का विशेष महत्व नहीं है।

(3) **उत्तर पश्चिम समूह** :— इसमें आदिनाथ की एक महत्त्वपूर्ण मूर्ति बनी है जिस पर सं. 1527 का अभिलेख अंकित है। यह विशेष कलात्मक नहीं है।

(4) **उत्तर पूर्व समूह** :—इसमें भी छोटी-छोटी मूर्तियाँ हैं और उन पर भी कोई लेख न होने से एतिहासिक दृष्टि से अधिक महत्व नहीं रखती हैं। कला की दृष्टि से भी उनका कोई विशेष महत्व नहीं है।

(5) **दक्षिण पूर्व समूह** :— इस समूह की मूर्तियाँ कला की दृष्टि से अत्याधिक महत्त्वपूर्ण हैं। ये मूर्तियाँ फूलबाग के दरवाजे से निकलते ही लगभग आधे मील के क्षेत्र में खुदी हुई दिखाई देती हैं। अन्य मूर्तियों की अपेक्षा कुछ बाद में बनने के कारण ये अभ्यस्त हाथों द्वारा निर्मित होने के कारण इनमें अंगों के अनुपात और सौष्ठव में कहीं न्यूनता नहीं दिखाई देती। इनमें कला का रूप निखर उठा है।

इस समूह में लगभग 20 प्रतिमायें 20 से 30 फुट तक की ऊँचाई की और लगभग इतनी ही 8 से 15 फुट तक की ऊँचाई लिये हुये हैं। इसमें आदिनाथ, नेमिनाथ, पद्मप्रभु, चन्द्रप्रभु, संभवनाथ, कुन्तनाथ, और महावीर आदि की मूर्तियाँ हैं। इनमें कुछ एक मूर्तियों पर 1525 से 1530 तक के अभिलेख खुदे हुये हैं।

इन समूहों में तीर्थंकरों के अतिरिक्त अंबिका, यक्ष, यक्षिणी तथा विभिन्न प्रतीक भी उत्कीर्ण किये गए हैं। इनके अतिरिक्त तेली की लाट के पास तथा गूजरी महल संग्रहालय में रखी प्रतिमायें भी अधिकतर इनकी समकालीन प्रतीत होती हैं। इससे प्रतीत होता है कि उपरोक्त समूहों के अतिरिक्त अन्य प्रतिमाओं का भी निर्माण हुआ था।

ग्रन्थ निर्माण-मूर्ति प्रतिष्ठायें :—

इनके शासनकाल में ही कुशा साह जी जैसवाल वंशज ने गोपाचल पहाड़ी के बाहरी तरफ कुछ गुफाओं में मूर्तियाँ खुदवाईं तथा मन्दिर बनवाकर प्रतिष्ठायें

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

करवाई जिसमें करोड़ों रुपये व्यय हुये । एक अन्य अग्रवाल वंशज गोयल गोत्री खल्हा नामक जैन सज्जन ने भी गोपाचल के बाहरी ओर गुफा मन्दिर बनवाकर आचार्य महीचन्दजी महाराज द्वारा प्रतिष्ठा करवाई। इसमें भी करोड़ों रुपये व्यय हुये । सं. 1515 में बाबड़ी की ओर गोलालारे वंशज् कुमुद चन्द्र ने पार्श्वनाथ की मूर्ति की प्रतिष्ठा कराई जिसमें सिंहकीर्ति नामक भट्टारक ने भी भाग लिया ।

सं. 1521 में ग्वालियर के जैसवाल कुल भूषण उल्हा साहू के नेष्ठ पुत्र साहू पदमसिंह ने अपनी चंचल लक्ष्मी का उपयोग करने के लिये 24 जिनालयों का निर्माण करवाया तथा एक लाख ग्रन्थ लिखवाकर भेंट किये ।[32] इनके राज्यकाल में जैन साहित्य रचना का भी कार्य हुआ। कविवर रईधू ने इनके राज्य काल में "सम्यक्त्व कौमुदी" तथा "श्रावकाचार" की रचना की ।

उपरोक्त मन्दिरों में से कुछेक समाप्त हो गये हैं और कुछ का जीर्णोद्धार होकर नये मन्दिर बन गये हैं जो अभी भी ग्वालियर में अपने परिवर्तित रूप में स्थित हैं । साहित्य का अधिकतर भाग नष्ट हो गया है, बहुत कम ही शेष है ।

सं. 1521 में "ज्ञानार्णव" नामक ग्रन्थ की एक प्रतिलिपि लिपिबद्ध की गई ।[33] भ. गुणभद्र ने भी ग्वालियर निवासी जैन श्रावकों की प्रेरणा से अनेकों कथाओं की रचना की ।

कीर्तिसिंह की मृत्यु के पश्चात् उनके पुत्र कल्याणमल (मल्लसिंह) ने शासन की बागडोर संभाली। इन्होंने सं. 1481 ई. से 1486 ई. तक ही शासन किया । इनके समय में कोई उल्लेखनीय घटना नहीं हुई । संभवत अपने शासनकाल के 7 वर्षों में इन्होंने कीर्तिसिंह के उन कार्यों को, जो अधूरे थे, पूर्ण किया। इनका काल बहुत शान्तिपूर्वक बीता । इनके काल का सं. 1552 का केवल एक ही मूर्तिलेख उपलब्ध है ।[34]

सन् 1486 ई. में कल्याणमल की मृत्यु के पश्चात् उनका पुत्र मानसिंह गद्दी पर बैठा । यह राजा, बड़ा प्रतापी, संगीत प्रेमी और कला प्रेमी था और जिस किसी प्रकार से अपने पूर्वजों द्वारा संरक्षित एवं संवर्धित राज्य को स्वतंत्र रखने में समर्थ हो चुका था ।[35] इसे अपने शासनकाल में अनेकों बार बहलोल लोदी और उसकी मृत्यु पर उसके पुत्र सिकन्दर लोदी से लोहा लेना पड़ा । इसने संगीत और कला को अपना संरक्षण प्रदान किया । इसके काल में यहाँ एक संगीत विद्यालय भी था । सुप्रसिद्ध गायक तानसेन ने इसी

32. बिज्जुल चंचलु लच्छीसहाउ, आलोइविहुउ जिणधम्मभाउ ।
जिण गंथु लिहावउ लक्खु एकु, सावय लक्खा हारीति रिक्खु ।
मुणि भोजन भुंजाविय सहासु, चउवीस जिणालउ किउ सुमासु —जैन ग्रन्थ प्रशस्ति, जैन ग्रन्थ प्रशसित सं०, पृ० 144 बाराबंकी शास्त्र भंडार. ।

33. यह ग्रन्थ जैन सिद्धान्त भवन आरा में उपलब्ध है ।

34. जैन लेख संग्रह—पूर्णचन्द्र नाहर भाग 2 ।

35. एक सोबनकी लंका जिसि, तो वरू राउ सबल वरवीर। भुयबल आयु जु साहस धीर, मानसिंह जग जानिये । ताके राज सुखी लोग, राज समान करहिं दिनभोग । जैनधर्म बहुविधि चलें, श्रावगदिन जु करें षट् कर्म ।

—नमीश्यवर गीत

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विद्यालय में संगीत शिक्षा ग्रहण की थी। इसके द्वारा बनवाया गया महल मान मन्दिर (चित्र महल) हिन्दू स्थापत्य कला का अदभुत नमूना है। बाबर ने भी इस महल की कारीगरी की प्रशंसा की है। इसके अतिरिक्त इसने मृगनयनी गूजरी के लिये गूजरी महल बनवाया। ध्रुपद गीतों का आविष्कार भी सर्वप्रथम महाराजा मानसिंह द्वारा ही हुआ। इन्होंने "मान कुतुहल" के नाम से एक संगीत ग्रन्थ की रचना की। परन्तु इन सबके बावजूद इसके शासनकाल में इसके द्वारा किसी प्रतिभा सम्पन्न साहित्यकार को प्रश्रय नहीं दिया जाने से, इस समय तक उपलब्ध अपभ्रंश की रचनाओं की परम्परा समाप्त हो गई जिसके कारण आज अन्य अनेकों तथ्य अँधेरे के गर्त में डूब गये हैं।

महाराजा मानसिंह के काल का सन् 1495 ई. का एक शिलालेख अवश्य ग्वालियर गढ़ की एक जैन प्रतिमा की चरण चौकी पर मिला था,[36] जिससे इस प्रदेश की जैन धर्म की तत्कालीन स्थिति पर प्रकाश पड़ता है। उसकी प्रथम तीन पंक्तियाँ महत्त्वपूर्ण हैं।

श्रीमद् गोपाचलगढ़ दुर्गे महाराजाधिराज श्री मल्लसिंहदेव विजयराज्ये प्रवर्तमाने। संवत 1552 वर्षे ज्येष्ठ सुदि 9 सोमवासरे श्री मूलसंघे वलत्करगणे सरस्वतीगच्छे। कुंदकुंदाचार्यान्विये। भ. श्री पद्मनन्दिदेव तत् पट्टालंकार श्री शुभचन्द्र देव। तत्पट्टे भ. मणिचन्द्र देव। तत्पट्टे पं. मुनि ···· गणि कचर देव तदन्वये बारह श्रेणी वंशे सालम भार्या व ·····

उक्त शिलालेख से प्रकट होता है कि मानसिंह के काल में भी कुछ जैन प्रतिमाएँ उत्कीर्ण की गई थीं। उक्त प्रतिमा की स्थापना सरस्वती गच्छ के भट्टारकों ने कराई थी।

भट्टारक मणिचन्द्र देव के पश्चात् जो मुनि हुए उनका नाम उक्त शिलालेख में नहीं पढ़ा जा सका, तथापि उन्हें भट्टारक के स्थान पर मुनि कहने से प्रकट होता है कि मूलसंघ की इस शाखा का मूल पट्ट ग्वालियर के बाहर कहीं स्थापित हो गया था।[37]

प्राचीन साहित्य के अभाव में यह कहना कठिन है कि महाराजा डूंगरसिंह एवं कीर्तिसिंह के राज्यकाल में समादृत जैन साधुओं एवं भट्टारकों के प्रति उनका व्यवहार कैसा था तथापि इस बात की संभावना कम ही है कि संगीत, भवन निर्माण, कला को संरक्षण देनेवाले तथा युद्धों में व्यस्त महाराजा धार्मिक विवेचन के लिये समय दे सके होंगे। साहित्यिक प्रमाणों के अभाव में इनके काल के संबंध में कोई शोध-कार्य नहीं हो पाया है। फिर भी एक-दो उल्लेख मिलते हैं जिनके अनुसार सन् 1501 में चैत्र सुदी 10 सोमवार के दिन काष्ठासंघ नंदिगच्छ विद्यागण के भट्टारक सोमकीर्ति और भ. विजयकीर्ति के शिष्य ब्रह्मकाला द्वारा गोपाचल दुर्ग में आत्म पठनार्थ अमर कीर्ति के "षट्कर्मोपदेश" की प्रति लिखवाए जाने का उल्लेख मिलता है।[38] इसके अतिरिक्त सन् 1512 में गोपाचल में श्रावक सिरीमल के पुत्र चतरू ने 44 पद्यों के "नेमीश्वर गीत" की रचना

---

36. ग्वालियर राज्य के अभिलेख, क्र० 341, पूर्णचन्द्र नाहर, जैन अभिलेख—भाग 2, क्र० 1429।
37. ग्वालियर के तोमर—हरिहर निवास द्विवेदी, प्र० 1।
38. अथ नृपति विक्रमादित्य संवत् 1558 वर्षे चैत्र सुदी 10 सोमवासरे अश्लेखा नक्षत्रे गोपाचलगढ़ दुग महाराजाधिराज श्री मानसिंह राज्ये प्रवर्त्तमाने श्री काष्ठासंघे नंदिगच्छे विद्यागणे भ० श्री सोमकीर्ति देवास्तत्पट्टे भ० श्री विजयसेन देवास्तत शिष्य ब्रह्मकाला इद षट्कर्मोपदेशशास्त्र लिखाप्ये आत्मपठनार्थं।
—प्रशस्ति सं० आमेर पृ० 173

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

की। इसमें जैनियों के 23 वें तीर्थंकर नेमिनाथ का जीवन-परिचय अंकित है।[39]

उधर सिकंदर लोदी की मृत्यु के पश्चात् इब्राहीम लोदी ने शासन सँभालते ही अपने पूर्वजों की महत्त्वाकांक्षा को साकार करने के उद्देश्य से ग्वालियर दुर्ग पर पुनः आक्रमण कर दिया। इसी बीच सन् 1519 ई. में महाराजा मानसिंह की मृत्यु हो गई और तलवारों की छाया में उनके पुत्र विक्रमादित्य गद्दी पर बैठे। उनके नेतृत्व में राजपूत जी तोड़कर लड़े पर अपने से अनुपात में कई गुनी लोदियों की सेना पर विजय न पा सके और लोदियों के सेनापति हुमायूं से सन्धि करना पड़ी। वे अब शमसाबाद के एक जागीरदार मात्र रह गए और उन्हें लोदियों की ओर से पानीपत में बाबर के विरुद्ध युद्ध करने भेजा गया। इस बीच तँवर वंश के एक दूसरे तेजस्वी राजकुमार रामसिंह तोमर ने ग्वालियर दुर्ग पर आक्रमण कर किले के अफगान अधिकारी तातार खां को परास्त कर दुर्ग पर अपने झण्डे गाड दिये।

लगभग इसी काल में सन् 1523 ई. के आसपास कभी शेख मोहम्मद गौस नामक फक्कड़ साधू गाजीपुर (मूलनाम कुमारगढ़) से ग्वालियर आ बसे। वे आकर चन्द्रप्रभू के मन्दिर में ठहरे। यह चन्द्रप्रभू का मन्दिर वही विशाल जैन मन्दिर था जिसे वीरमदेव तोमर के मंत्री कुशराज ने बनवाया था।[40] यह मन्दिर आजम हुमायूं के आक्रमण के समय (सन् 1518-23) क्षतिग्रस्त कर दिया गया था। शेख गौस ने इसी में अपनी खानकाह बनाई और आज वहीं उसका मजार बना है।

इन पंक्तियों के लेखक ने सन् 1669 में प्रकाशित ग्वालियर जैन डायरेक्टरी में अपने एक लेख "अतीत की ओर एक दृष्टि" में इतिहासकारों का ध्यान इस ओर आकर्षित किया था, और बड़ी प्रसन्नता का विषय है कि सन् 1976 में प्रकाशित श्री हरिहर निवास जी द्विवेदी की पुस्तक "ग्वालियर के तोमर" में इस सम्बन्ध में उपलब्ध ऐतिहासिक प्रमाण एवं तथ्य उजागर हुए हैं। इस सम्बन्ध में खड्गराय की पुस्तक "गोपाचल आख्यान" में वर्णित सूत्र पर्याप्त प्रकाश डालता है :—

जो विधिना विधि आपनु करै, सोई होई न टारी टरै।
देखो विधना को संजोग, जनमें कहूँ कहूँ रहैं लोग ॥
पूरब गाजीपुर को ठाऊ, कुमरगढ़ा ताको रहि नाऊ।
मोहम्मद गौस जहां ते आई, रहे ग्वालियर में सुख पाइ ॥

विधिना विधि ऐसे ठई, सोई भई जु आई।
चन्द्रप्रभू के थोहरें, रहे गौस सुख पाई ॥[41]

इस बीच तातार खां दुर्ग में ही छिपा रहा और जैसे ही बाबर दिल्ली का सम्राट बना, तातार खां ने उसे गुप्त संदेश भेजकर उससे सहायता प्राप्त की और मोहम्मद गौस साहब की कृपा से ख्वाजा रहीम और शेख गोरन के नेतृत्व में विशाल सेना से दुर्ग पर आक्रमण कर, उसे अपने आधिपत्य में ले लिया और महाराजा रामसिंह तोमर मेवाड़ की ओर भाग गये। इस प्रकार सन् 1559 में दुर्ग पुनः मुगलों के हाथ में चला गया। उधर विक्रमादित्य पानीपत युद्ध में वीरगति पा गये। इसी के साथ ही तोमर वंश का सूर्य सदा के लिये अस्त हो गया। इसके साथ-साथ ही धार्मिक, साहित्यिक एवं

39. यह ग्रन्थ अभी आमेर भण्डार में सुरक्षित है।
संवत पन्द्रह सै छे गमें, गुनहत्तरि ताऊपर भने
भादों वदि पंचमीवार, सोम नषितु रेवती सार ॥
40. ग्वालियर के तोमर—हरिहरनिवास द्विवेदी पृ० 63।
41. पूर्वोक्त, पृ० 203—4।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कलात्मक गतिविधियाँ समाप्त हो गई। विक्रमादित्य का परिबार अब हुमायूं के अधीन हो गया। उसकी सद्भावना पाने के उद्देश्य से उन्होंने तँवरों द्वारा मांडू के सुल्तानों पर प्राप्त विजय की निशानी रत्नों का सरताज (कोहिनूर) नामक विश्वप्रसिद्ध हीरा हुमायूं को भेंट कर दिया।

मुगलों का पूर्ण अधिकार हो जाने के बाद जब बादशाह बाबर स्वयं ग्वालियर आया तब इस दुर्ग का अवलोकन करते समय सन् 1527 में उसकी कुदृष्टि दुर्ग पर स्थित जैन मूर्तियों पर भी पड़ी।

बाबर ने "बाबरनामा" में अपनी ग्वालियर यात्रा (28 सितम्बर 1528 ई.) का वर्णन करते हुए लिखा है:—[42]

इस बाहरी दीवार के नीचे तथा बाहर एक बहुत बड़ी झील है। यह (कभी-कभी) इतनी सूख जाती है कि झील नहीं रह पाती। इसमें से आब दुन्द जल संग्रह) में जल जाता है। उरवा के भीतर दो अन्य झीलें हैं। किले के निवासी इनके जल को सबसे अधिक उत्तम समझते हैं।

उरवा के तीन ओर ठोस चट्टानें हैं। इनका रंग बयाना की ठोस चट्टानों के समान नहीं है, अपितु फीका-फीका है। इन दिशाओं में लोगों ने पत्थर की मूर्तियां कटवा रखी हैं। वे छोटी-बड़ी सभी प्रकार की हैं। एक बहुत बड़ी मूर्ति, जो कि दक्षिण की ओर है, सम्भवतः 20 कारी ऊंची होगी। यह मूर्तियां पूर्णतः नग्न हैं और गुप्त अंग भी ढके हुए नहीं हैं। उरवा की इन दोनों बड़ी झीलों के चारों ओर 20-30 कूंए भी खुदे हैं। इनके जल से तरकारियां, फूल तथा वृक्ष लगाए जाते हैं।

उरवा बुरा स्थान नहीं है। यह बन्द स्थान है। मूर्तियां ही इस स्थान का सबसे बड़ा देष है। मैंने उनके नष्ट करने का आदेश दे दिया।

उरवा से निकलकर हम पुनः किले में प्रविष्ट हुए। हमने सुल्तानी पुल की खिड़की से सैर की। यह काफिरों के समय से अभी तक बन्द रही होगी। हम लोग सायंकाल की नमाज के समय रहीमदाद के बगीचे में पहुँचे। वहीं ठहर कर हम सो गए। हम लोगों ने इस बगीचे से प्रस्थान करके ग्वालियर के मन्दिरों की सैर की। कुछ मन्दिरों में दो-दो और कुछ में तीन-तीन मंजिलें थीं। प्रत्येक मंजिल प्राचीन प्रथानुसार नीची-नीची थीं। उनके पत्थर के स्तम्भ के नीचे की चौकी पर पत्थर की मूर्तियां रखी थीं। कुछ मन्दिर मदरसों के समान थे। उनमें दालान तथा ऊचे गुम्बज एवं मदरसों के कमरों के समान कमरे थे। प्रत्येक कमरे के ऊपर पत्थर के तराशे हुए सकरे गुम्बज थे। नीचे की कोठरियों में चट्टान से तराशी हुई मूर्तियां थीं, ज्ञात होता है कि ये आजन हुमायूं के घेरे के समय अपूज्य और भृष्ट कर दिये गए थे; और फिर बाबर के वंशजों के अधिकारियों ने इन्हें तुड़वा दिया।

एक जनश्रुति के अनुसार कहा जाता है कि एक रात्रि को वह और उसके सैनिक इतने विशाल आकार की दिगम्बर जैन मूर्तियों को देखकर चकित एवं भयभीत हो गये। उसके क्रोध की सीमा न रही। वह जैन धर्म से इतना क्रुद्ध हुआ कि अगले दिवस ही उसने अपनी सेना को दुर्ग पर स्थित सभी मूर्तियों को समूल रूप से नष्ट कर देने का आदेश प्रदान किया परन्तु यह कोई आसान कार्य नहीं था अतः मुगल सैनिक प्रतिमाओं को समूल रूप से नष्ट न कर सके, उन्हें खण्डित कर गये। और इस प्रकार कुशल कारीगरों की 33

42. ग्वालियर के तोमर—श्री हरिहर निवास द्विवेदी, पृ० 358

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वर्षों के कठिन परिश्रम से बनी मूर्तियों के सौन्दर्य को कुछ ही दिवसों में नष्ट कर दिया गया। क्रूर बाबर ने इस कृत्य का अपनी आत्मकथा (बाबरनामा) में बड़े गौरव के साथ उल्लेख किया है। इस प्रकार यदि सच पूछा जाये तो इस सारी घटना में जैन ही उसके सर्वाधिक कोपभाजन रहे। इस थोड़े काल में उसने दुर्ग पर स्थित इन मूर्तियों को ध्वस्त करने के अतिरिक्त नगरों में स्थित मन्दिरों को भी ध्वस्त किया, जहाँ उनको यह संभव न दिखा वहाँ मूर्तियों और वेदियों को ही नष्ट कर अपनी सन्तुष्टि कर ली।

परन्तु बाबर भी अधिक काल तक इस दुर्ग को उपभोग न कर सका और सन् 1540 में यह दुर्ग मुगलों के हाथ से निकलकर शेरशाह सूरी के हाथों में आ गया। उन्होंने इसे राजधानी के रूप में प्रयोग किया। और यहां से वे शेष राज्य पर शासन करते रहे। सन् 1559 ई. में अकबर ने सूरी वंश को नष्टकर ग्वालियर को अपने अधिकार में ले लिया।

इस बीच शेख मोहम्मद गौस ग्वालियर में महत्त्वपूर्ण व्यक्ति बने रहे। ग्वालियर दुर्ग पर मुगल राजाओं का अधिकार कराने और हर संकट के समय उन्हें मार्गदर्शन व सहायता प्रदान कर अनके राज्य को स्थायी बनाने में शेख गौस ने प्रमुख भूमिका का निर्वाह किया। इस कारण विभिन्न मुगल शासकों बाबर, हुमायूं और अकबर की नजर में वे सदैव सम्मानीय व्यक्ति बने रहे। ग्वालियर दुर्ग पर नियुक्त मुगल अधिकारी भी उनसे अत्याधिक प्रभावित रहे। हिजरी सन् 970 (सोमवार 10 मई 1563 ई.) को आगरा में शेख मोहम्मद गौस की मृत्यु हो गई। उनका शव ग्वालियर लाया गया। चन्द्रप्रभु के मन्दिर में जहाँ शेख की खानकाह थी उन्हें दफना दिया गया; और वहीं उतका मकबरा वना दिया गया।[43]

उसके बाद लगभग 200 वर्षों तक ग्वालियर पर मुगलों का ही अधिकार रहा। इस कार्यकाल में दुर्ग का प्रयोग केवल बंदी गृह के रूप में ही किया गया मुगल शासकों द्वारा अनेकों ऐसे शहजादे, जागीरदार, बड़े सरदार तथा अन्य महत्वपूर्ण व्यक्ति जिन्हें जनता के समक्ष मृत्यु दण्ड देना अहितकर प्रतीत होता था, इस दुर्ग में लाये जाने लगे। यहाँ उन्हें या तो मन्द जहर दे दिया जाता था या ऐसी यातनायें दी जाती थीं जिनसे वह पागल होकर स्वयं प्राणान्त कर लेते थे। इस तरह विभिन्न क्षेत्रों से लाये गये राज विद्रोही हाथी पोल से चढ़ाकर किले में लाये जाते थे और फिर वे संसार के दर्शन करने के लिये कभी नहीं लौटते थे।

अकबर की मृत्यु के बाद जब जहांगीर दिल्ली के तख्त पर बैठा तब यह दुर्ग उसके अधिकार में आ गया। उसने लिखा है कि तख्त पर बैठने के अवसर पर उसने मुगल साम्राज्य के समस्त कैदियों को बन्दीगृह से मुक्त करने की आज्ञा दी। उस समय ग्वालियर दुर्ग से 7 हजार कैदी छोड़े गये। उनमें कई लोगों की आयु 40 वर्ष के लगभग थी। परन्तु बाद में बादशाह जहांगीर ने भी इस दुर्ग को बन्दीगृह के रूप में ही प्रयोग किया।

जहांगीर के ही शासनकाल में एक बार भट्टारक ब्रजभूषण के शिष्य पदमावती पुरवाल वंशज, टापू निवासी श्री ब्रह्मगुलाल जी मुनि होने के बाद भ्रमण करते हुये ग्वालियर भी पधारे।[44] मुनि के साथ-साथ वे कवि भी थे। सन् 1618 ई. में इन्होंने यहां पर "त्रेपन क्रिया"

---

43. ग्वालियर के तोमर, हरिहर निवास द्विवेदी पृ. 209।
44. अगरचन्द नाहटा—मध्य प्रदेश के कवि "ब्रह्मगुलाल" मध्यभारत सदेश, 31 दिसम्बर 1955

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नामक ग्रन्थ की रचना की। इसमें श्रावकों की त्रेपन क्रियाओं का सरल व सुन्दर भाषा में वर्णन किया गया है। इसके अन्त में वे लिखते हैं कि—

ए त्रेपन विधि करहु क्रिया भव पाप समूहन चूरे हो।
सोरह् से पैंसठि समच्छर कातिक तीज अन्धियारी हो।
भट्टारक जगभूषण चेला ब्रह्मगुलाल विचारी हो ।।
ब्रह्मगुलाल विचारि बनाई गढ़ गोपाचल थाने।
छत्रपति चहु त्रक विराजे साहे सलेम मुग लाने ।। 1 ।।

जहांगीर के बाद औरंगजेव उसका उत्तराधिकारी बना। उसने भी इस दुर्ग को बन्दीगृह के रूप में प्रयोग किया। अपने भाई मुराद को उसने इसी दुर्ग में बन्दी बनाया था। दारा के पुत्र सुलेमान शिको: को भी इसी दुर्ग में कैद रखा गया। अपने पुत्र सुलतान मुहम्मद को भी औरंगजेव ने यहीं कैद रखा। मुराद को फांसी भी इसी दुर्ग में दी गई। इन सब कारणों से ग्वालियर का किला मृत्यु का द्वार कहा जाने लगा।

इस प्रकार दो शताब्दियों के इस काल में ग्वालियर दुर्ग बन्दी घर के रूप में ही प्रयुक्त होता रहा। नगर क्षेत्र तथा उसके विकास के ऊपर कोई ध्यान नहीं दिया गया और बादशाह के द्वारा नियुक्त नुमायन्दे ही राज्य की देखभाल करते रहे। इस काल में जैनियों की दशा के बारे में कुछ भी लेख आदि नहीं मिलते हैं। संभवत: इस काल में शासन की विरोधी नीति के कारण जैनियों की क्या, भारतीय मूलों के सभी धर्मों की दशा अच्छी नहीं थी। इस काल में अनेकों हिन्दू, शासकों के कृपा पात्र बनने के उद्देश्य से या तो स्वयं-मुसलमान हो गये या जबरदस्ती मुसलमान धर्म में दीक्षित कर दिये गये। शासकों द्वारा धार्मिक स्वतंत्रता का खुलकर हनन किया गया। इस प्रकार राष्ट्रीय संरक्षण समाप्त होना और धर्म पालन पर प्रतिबंध ही इसके मूल कारण रहे।

तथापि इतने सबके बावजूद भी जैन धर्मावलंबियों की गतिविधियाँ पूर्णत: समाप्त न की जा सकीं। यदा-कदा अवसर प्राप्त होने पर जैन धर्मावलम्बी अपनी धार्मिक गतिविधियों को संचालित करते रहे। दौलतगंज में बना हुआ पार्श्वनाथ मन्दिर लगभग इसी काल में निर्मित हुआ। इसके अतिरिक्त अन्य किसी मन्दिर आदि के निर्माण के संबंध में कोई विवरण प्राप्त नहीं है।

इधर 18वीं शताब्दि के उत्तरार्द्ध के प्रारंभ से ही मराठे लोग अत्याधिक शक्तिशाली हो उठे और दिल्ली तक हमले करने लगे। बाजीराव पेशवा ने राणोजी सिन्धिया को मालवा राज्य की कमान सौंप दी। उन्होंने उत्तर भारत में राज्य विस्तार करने का अभियान प्रारंभ कर दिया। और ग्वालियर को इसका केन्द्र बनाया। राणोजी की मृत्यु के पश्चात् उनके पुत्र जयप्पा और माधोजी ने उनका कार्यभार सँभाला। इसी बीच सन 1761 में पानीपत में युद्ध विभीषिका प्रज्वलित हो उठी और भारत भर में विभिन्न पक्षों के वीरों की तलवारें खिंच गईं। माधव जी इसमें घायल हो गये। इस बीच भरतपुर के जाटों ने लोकेन्द्र सिंह के चाचा के नेतृत्व में दुर्ग पर अधिकार कर लिया। उधर उत्तर भारत का और भी तमाम भाग मराठों के हाथ से निकल चुका था। पर शीघ्र ही पानीपत से लौटकर मराठा वीरों ने महादजी के नेतृत्व में पुन: उत्तर भारत में विजय अभियान प्रारंभ कर दिया और ग्वालियर दुर्ग को अपने अधिकार में ले लिया। इन्होंने इसे फौजी केन्द्र के रूप में प्रयोग करने के उद्देश्य से ग्वालियर दुर्ग के दक्षिण में 1 लाख सैनिकों की बड़ी फौजी छावनी का कैम्प लगाया और इसे लश्कर नाम दिया।

युद्ध के इस वातावरण के मध्य भी धर्मिक गतिविधियाँ यदाकदा संचालित होती रहीं। सन् 1768 के लगभग सेठ मथुरादास लक्ष्मीचन्द्र जी अग्रवाल द्वारा लश्कर क्षेत्र में अत्यन्त भव्य एवं कलात्मक श्री दिगम्बर जैन बड़ा मन्दिर पुरानी सहेली का निर्माण कराया गया। इस काल में ही एक अन्य भव्य एवं कलात्मक मन्दिर श्री दिगम्बर जैन मन्दिर चम्पाबाग का निर्माण कार्य

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सम्पन्न हुआ। ये दोनों मन्दिर वर्तमान में ग्वालियर में उपलब्ध जैन मन्दिरों में कलात्मक दृष्टि से अद्वितीय हैं।

इन दिनों ग्वालियर में महादजी का अधिकार था। उन्होंने उज्जैन को अपनी राजधानी के रूप में प्रयोग किया। यह बड़े प्रतापी शासक थे। इनका सारा जीवन युद्धों में बीता। जिसमें इन्होंने उत्तर में एक बड़े भाग पर अधिकार कर लिया और यह कलकत्ते के समान एक महत्वपूर्ण स्थान बन गया। दिल्ली के शासक भी इसके आश्रय को उत्सुक रहते थे। वारेन हेस्टिंग्ज इस बढ़ती शक्ति को सहन न कर सका और 3 अगस्त सन् 1760 को आधी रात के समय किले की पश्चिमी दीवार से चढ़-कर उसने अपनी फौजों को दुर्ग में प्रविष्ट करा दिया। दुर्ग का यह भाग अभी भी फिरंगी पहाड़ी के नाम से प्रसिद्ध है। इस प्रकार दुर्ग अँग्रेजों के हाथ में चला गया। 13 अक्टूबर सन् 1781 को पुनः एक संधि में यह दुर्ग राणा लोकेन्द्र सिंह को मिला।

लगभग इसी काल में ग्वालियर नगर में "जती जी के मन्दिर" के नाम से जाने वाले मन्दिर का निर्माण हुआ। इससे प्रतीत होता है कि अशान्ति के इस वातावरण में भी मन्दिरों आदि का निर्माण कार्य होता रहता था।

सन् 1783 में सिन्धिया शासकों ने अँग्रेजों की मदद प्राप्त कर एक पहरेदार की सहायता से इस दुर्ग में पुनः प्रवेश किया। राणा को मालूम पड़ते ही उसने गुलामी से बचने के लिये आत्महत्या कर ली। इस बीच महादजी ने लश्कर नामक फौजी छावनी के पास एक बाड़ा कचहरी भी स्थापित की। जिसमें वे युद्धों से अवकाश निकालकर प्रशासन एवं न्याय का कार्य देखते थे।

वे दक्षिण के राज्य को भी इसी राज्य में मिलाकर एक बड़ा हिन्दू राज्य स्थापित करना चाहते थे। इसी बीच 12 फरवरी सन् 1794 ई. को पूना से 2 कोस दूर स्थित बानोड़ी नामक ग्राम में इनका देहान्त हो गया।

इनके कोई पुत्र न था अतः इनकी मृत्यु के पश्चात् तुकोजीराव के 14 वर्षीय पुत्र आनंदराव इनके उत्तराधिकारी बनाये गये और उनका नाम दौलतराव रखा गया। कार्यभार सँभालने के एक वर्ष बाद ही इन्हें निजाम से युद्ध करना पड़ा जिसमें ये विजयी हुये और इन्हें करोड़ों रुपयों का लाभ हुआ। इसके बाद ये अन्य राजाओं के सहयोग से कार्य चलाते रहे। किन्तु इन्हीं दिनों उत्तर भारत में फिर से अशान्ति फैल गई। अतः महाराजा दौलतराव पूना से उत्तर भारत की ओर आये। रास्ते में इन्होंने इन्दौर के होल्कर राजा को परास्त कर उनके राज्य को खूब लूटा। परन्तु अन्त में आपको अंग्रेजों से युद्ध करना पड़ा। इस लड़ाई में दक्षिण भारत में स्थित अहमदनगर, और अशीदगढ़ के बड़े-बड़े किले इनके हाथ से निकल गये। इधर उत्तर भारत में भी लार्ड लेक ने धावा बोल दिया। जिसमें दिल्ली, अलीगढ़, मथुरा और आगरा के इलाके इनके हाथ से जाते रहे। सन् 1802 में ग्वालियर दुर्ग भी इनके हाथ से चला गया। इनके अधिकांश सैनिक युद्ध में काम आ चुके थे। और कोई रास्ता न देखकर इन्हें सन् 1805 में मजबूरी में अँग्रेजों से सन्धि करनी पड़ी जिसमें इन्हें ग्वालियर और आसपास का क्षेत्र वापिस कर दिया गया। सन् 1812 में इन्होंने अपने पिताजी द्वारा स्थापित फौजी कैम्पवाले मैदान लश्कर पर पुनः छावनी डाली। सन् 1812 में यहां नगर बसाकर इसी को ग्वालियर राज्य की राजधानी बनाया तथा इसका नाम लश्कर ही रखा।

कहा जाता है कि इसी फौजी छावनी में एक जैन ओवरसियर भी कार्य करते थे। जब मुरार में छावनी स्थापित की गई तो वे वहाँ रहने लगे। इनकी माँ बड़ी धार्मिक प्रवृत्ति की थीं तथा नित्यप्रति दर्शन करने के पश्चात् ही अन्न ग्रहण करती थीं। मुरार में मन्दिर न होने के कारण उन्हें बड़ी परेशानी होती थी और दर्शन

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

करने के लिये उन्हें बड़ागांव जाना पड़ता था। अत: उन्होंने अपने पुत्र से मुरार में एक मन्दिर स्थापित करने को कहा। पुत्र ने अपनी माँ की सुविधा की दृष्टि से मुरार में एक कमरे के अन्दर मूर्ति प्रतिष्ठा कराकर मन्दिर की स्थापना की। जो आज अपने बड़े रूप में बना हुआ है। लश्कर में कसेरा ओली में स्थित राजा जी का चैत्यालय भी इसी काल का बना हुआ है।

इस प्रकार इस काल में महाराजा दौलतराव अँग्रेजों के सहयोग से राज्य कार्य चलाते रहे। सन् 1827 में इनका स्वर्गवास हो गया। इनके पश्चात उनकी प्रिय पत्नी ने एक 11 वर्षीय नाबालिग लड़के को गोद लिया और उसका नाम जनकोजीराव रखा। उनके युवा होने तक महारानी ने ही राज्य संचालन का कार्य किया। युवा होने पर उन्होंने स्वयं शासन का भार संभाल लिया इनके काल में कोई विशेष घटना घटित नहीं हुई। दिनांक 7 फरवरी 1843 ई. को अल्पायु में ही इनका स्वर्गवास हो गया।

नया बाजार लश्कर में स्थित दिगम्बर जैन मन्दिर और ग्वालियर नगर में स्थित गोकुलचन्द्र का मन्दिर इन्हीं के काल में निर्मित हुये थे।

महाराजा जनकोजीराव के कैलाशवासी होने पर महारानी ताराबाई ने उनका पुत्र न होने के कारण एक 8 वर्षीय बालक को गोद लिया। उनका नाम जीवाजीराव सिंधिया रखा गया। महाराजा की नाबालिगी में कौन प्रबन्ध करे इस विषय को लेकर सरदारों में खूब झगड़े हुये। अँग्रेजों ने मौके का फायदा उठाकर सन् 1845 में एक 6 सदस्यीय कौंसिल आफ रिजेन्सी कायम कर दी। 9 वर्ष तक राज्य का सारा प्रबंध इसी कौंसिल ने किया। इस कौंसिल के शासनकाल में सन् 1848 में लश्कर में दानाओली में जैसवाल पंचायत द्वारा मन्दिर का निर्माण कार्य सम्पन्न हुआ।

सन् 1854 में महाराजा के बालिग होने पर वे स्वयं अँग्रेजों के मार्गदर्शन में कार्य करने लगे। 3 वर्ष पश्चात् ही सन् 1857 में भारत के राष्ट्रभक्त वीरों द्वारा स्वतन्त्रता संग्राम छेड़ दिया गया। महाराजा अँग्रेजों के परमभक्त थे। अत: इस अवसर को अँग्रेजों को प्रसन्न करने के लिये उपयुक्त समय मानकर उन्होंने अपनी भक्ति भावना का पूर्ण परिचय देने का संकल्प किया। परिणाम यह हुआ कि 28 मई को स्वतन्त्रता प्रेमी सैनिकों ने विद्रोह कर दिया। उधर महाराजा अँग्रेजों की सुरक्षा का प्रबंध करने में जी जान लगाकर जुट गये। परन्तु समूह एक शक्ति होती है। 14 जून 1857 की रात्रि को कन्टिन्जेन्ट फौज ने भी राष्ट्रप्रेमियों के समर्थन में विद्रोह कर दिया। अनेकों अँग्रेज अफसर मौत के घाट उतार दिये गये। महाराजा ने अपनी भक्ति का परिचय देते हुये शेष सभी जीवित अँग्रेज पुरुषों को महिलाओं व बच्चों सहित आगरा पहुँचा दिया। दिनांक 28 मई सन् 1858 ई. को नाना पेशवा, तात्या टोपे और महारानी लक्ष्मीबाई के नेतृत्व में स्वातंत्र्य वीरों की सेना राष्ट्र-द्रोहियों को खूंदती हुई ग्वालियर की छाती पर चढ़ आई और 1 जून से भयंकर रूप में युद्ध शुरू कर दिया। ग्वालियर के सारे राष्ट्रप्रेमी स्वातन्त्र वीरों ने उनका साथ दिया जिससे भयभीत होकर जियाजीराव युद्ध-स्थल से भाग खड़े हुये और अंग्रेजों की शरण में आगरा आ पहुँचे।

इधर स्वातंत्र वीरों ने सभी शासकीय केन्द्रों पर कब्जा कर लिया और ग्वालियर पर अपने झंडे गाड़ दिये। गोरखी में स्थित शासकीय खजाने को लूट लिया गया। इस समय अमरचन्द्र बांठिया नामक एक जैन धर्मावलंबी महाराजा के खजांची थे। लूट के समय वे वहीं मौजूद थे। उन्होंने स्वातंत्र्य वीरों का कोई प्रति-कार नहीं किया। उन्होंने खुलकर लूट की और सारा खजाना लूट लिया। वीर पुत्रों का संरक्षण पा ग्वालि-यर की भूमि निहाल हो उठी।

परन्तु दूसरी ओर सर ह्यू रोज ने वीरों से अनुपात में कई गुनी सेना लाकर उन्हें चारों ओर से घेर लिया।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

दिनांक 18 जून को भयंकर युद्ध हुआ । जिसमें अनेकों वीरों सहित वीरांगना लक्ष्मीबाई भी शहीद हुई । अवसर पाकर अँग्रेज पुनः सत्तारूढ़ हो गये । शान्ति स्थापित होने पर महाराजा जयाजीराव सिन्धिया भी ग्वालियर वापिस लौट आये । ग्वालियर आने के पश्चात् उन्होंने स्वातंत्र्य प्रेमी निवासियों को दण्ड देने का अभियान चालू किया। जिसका सर्वप्रथम शिकार ग्वालियर राज्य के कोषाध्यक्ष ओसवाल जैनवंशी श्री अमरचन्द्र वांठिया बनाये गये और उन्हें महारानी लक्ष्मीबाई आदि से मिलकर शासकीय खजाने की लूट करवाने के आरोप में मृत्यु दण्ड देने का आदेश दिया । भविष्य में अन्य नगरवासी कभी इस प्रकार का कृत्य न कर सकें अतः उन्हें भयभीत करने के उद्देश्य से अमरचन्द्र वाठिया को सराफा बाजार में स्थित एक विशाल नीम के वृक्ष पर लटकाकर फांसी दी गई। शहीद का मृत शरीर 3 दिवस तक नीम पर ही टँगा रखा गया । जिससे अन्य नगरवासी भविष्य में कभी इस प्रकार का कार्य करने का साहस न करें। यह वृक्ष अभी भी खूनी नीम के नाम से प्रसिद्ध है ।

बाद में महाराजा जयाजीराव सिन्धिया के इन भक्तिपूर्ण कृत्यों से प्रसन्न होकर दिनांक 30 नवम्बर को आगरा में एक समारोह आयोजित कर गवर्नर जनरल लार्ड कैनिंग ने पुराने ग्वालियर राज्य में तीन लाख रुपये का राज्य और शामिल कर उन्हें पुनः औपचारिक रूप से राज्यभार सौंपते हुए अँग्रेजों की भक्ति के लिए उनकी भूरि-भूरि प्रशंसा की और साथ ही महाराजा के और बकाया लाखों रुपये की रकम भी छोड़ दी। उन्हें अनेकों उत्कृष्ट पदवियों से विभूषित कर ब्रिटिश सेना का आनरेरी जनरल नियुक्त किया । परन्तु दुर्ग पर अभी भी अँगेजों का ही आधिपत्य रहा । महाराजा द्वारा अनेकों बार याचना करने पर सन् 1886 में पुनः यह दुर्ग सिन्धिया राजवंश को प्रदान कर दिया गया । महाराजा अपने सारे राज्यकाल में अँग्रेजों को प्रसन्न करने व स्वामिभक्ति का परिचय देने में ही लगे रहे और अँग्रेज यदा-कदा उन्हें खुश रखने के लिये सम्मानित करते रहे ।

इनके काल में अशान्तिपूर्ण वातावरण होते हुये भी अनेकों मन्दिर आदि के निर्माण कार्य संपन्न हुये । सन् 1864 के लगभग रामकुई पर नसियां जी के मन्दिर की स्थापना हुई । लगभग 1 वर्ष बाद ही छत्री बाजार स्थित मन्दिर का निर्माण हुआ । ग्वालियर में खच्चाराम मुहल्ला में स्थित मन्दिर भी इसी काल का बना हुआ है । सन् 1878 में मामा के बाजार में भी एक जैन मन्दिर का निर्माण कार्य संपन्न कराया गया ।

सन् 1885 के लगभग महाराजा को जलोधर रोग हो गया जिसकी पीड़ा से परेशान होकर वे दिल बहलाने के उद्देश्य से यात्रा पर भी गये परन्तु दिनांक 20 जून 1886 के दिन बड़े कष्टपूर्वक उनका प्राणांत हो गया।

इनकी मृत्यु के समय इनके पुत्र माधवराव केवल दस वर्ष के ही थे । परन्तु परम्परा के अनुसार पिता की मृत्यु के पश्चत् उनका ही राज्याभिषेक कर दिया गया। अवयस्कता के काल में अंग्रेजों द्वारा नियुक्त एक कौंसिल द्वारा सरदारों और अधिकारियों के सहयोग से राज्य कार्य का संचालन किया गया ।

सन् 1888 में मामा के बाजार में एक दिगम्बर तथा सन् 1893 में सराफा बाजार में एक श्वेताम्बर जैन मन्दिरों का निर्माण करवाया गया । इनमें सराफा बाजार श्वेताम्बर मन्दिर अत्यन्त भव्य एवं कलात्मक है ।

दिनांक 15 दिसम्बर 1894 के दिन इस क्षेत्र के गवर्नर जनरल ने एक समारोह में 30 हजार वर्ग मील में फैले 32 लाख की आबादी और डेढ़ करोड़ की आयवाले तत्कालीन ग्वालियर के शासन का कार्यभार माधवराव सिंधिया को सौंप दिया ।

अँग्रेजों का संरक्षण होने के कारण ये सारे शासनकाल में युद्ध आदि के भय से निश्चिन्त रहे । अतः प्रजा

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

के लाभ के कार्यों में अपना काफी समय दिया। इनके काल में क्षेत्र के सर्वांगीण विकास की ओर काफी ध्यान दिया गया। आपने सभी धर्मों को प्रगति का समुचित अवसर दिया। वे स्वयं सभी धर्मों के विशेष उत्सवों में भाग लेते थे।

इनके शासनकाल में अनेकों जैन मन्दिरों का निर्माण कार्य संपन्न हुआ। सन् 1903 में मामा के बाजार में एक और जैन मन्दिर का निर्माण कराया गया, जो बड़ा मन्दिर मामा के बाजार के नाम से जाना जाता है।

माधवराव सिंधिया के काल में राज्य में अनेकों विकास कार्यक्रम संचालित हुए। इस बीच सम्पूर्ण देश में कांग्रेस और महात्मा गांधी के नेतृत्व में स्वाधीनता आन्दोलन की लहर ने देशी राज्यों में भी जन जागृति को प्रोत्साहित किया। ग्वालियर भी इससे अछूता न रहा। गांधीजी के विचारों में अहिंसा की प्रधानता ने जैनों को सर्वाधिक आकिषत किया। ग्वालियर में 1917 ई. में श्री श्यामलाल पाण्डवीय ने ग्वालियर राज्य में "गल्प-पत्रिका" के नाम से सर्वप्रथम समाचार-पत्र प्रकाशित कर पत्रकारिता के माध्यम से राजनीति में प्रवेश किया। अपने उग्र विचारों के कारण वे कई बार दण्डित हुए व जेलयात्रा भी की। 30 अप्रैल 1938 को विदिशा के प्रसिद्ध अभिभाषक श्री तख्तमल जैन के सद्प्रयत्नों से ग्वालियर में सार्वजनिक सभा की स्थापना हुई जो बाद में ग्वालियर स्टेट कांग्रेस में परिवर्तित हो गई। इसी क्रम में समाजवादी विचारधारा के श्री भीकमचन्द जैन ने भी राजनीतिक एव जन-जागरण आन्दोलनों में एवं गतिविधियों में सक्रिय एवं उल्लेखनीय भाग लिया। इनके अतिरिक्त अन्य कई जैन धर्मावलंबियों ने भी ग्वालियर के राजनीतिक एवं सांस्कृतिक विकास में गतिशील योगदान दिया।

इस प्रकार ग्वालियर के सांस्कृतिक विकास में जैनों ने अत्यधिक महत्वपूर्ण भूमिका निर्वाह की है। ग्वालियर के इतिहास, साहित्य एवं पुरातत्व का एक बड़ा भाग जैनों से प्रभावित रहा है। आज इस सम्बन्ध में जो भी साहित्यादि प्रमाण उपलब्ध हैं, उनकी रक्षा में भी जैनों ने अत्याधिक महत्वपूर्ण योग दिया है, उनके इस गुण के कारण सुरक्षित साधनों ने ही आज ग्वालियर के इतिहास के उपलब्ध ज्ञान को उजागर किया है, तथापि आज भी इसके बहुत से पक्ष लुप्त हैं, जिन्हें उजागर करने को पर्याप्त शोध की आवश्यकता है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org